

-: प्रवचनकार :-

पूज्य आचार्यदेव श्री विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.

-: हिन्दी अनुवादक-संपादक :-

पूज्य आचार्यदेव श्री विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.

जिनवाणी का अमृत

प्रवचनकार

परम शासन प्रभावक, व्याख्यान वाचस्पति
दीक्षा युग प्रवर्तक **पूज्यपाद आचार्यदेव**
श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.

हिन्दी अनुवादक-संपादक

बीसवीं सदी के महान् योगी, भावाचार्य तुल्य पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न,
मरुधररत्न, गोड़वाड़ के गौरव, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर,
सरस्वती नंदन, पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

281

प्रकाशक

दिव्य सन्देश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,
बे.व्यु. बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ.एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Cell 84 84 84 84 51 (only whatsapp)

आवृत्ति : प्रथम • **मूल्य :** 220/- रुपये • **प्रतियाँ :** 925
विमोचन तिथि : 8-11-2026
विमोचन स्थल : प्रेमसूरि गुरु मंदिर, पिंडवाडा, (राज.)
• **Website :** divyasandesh.store

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 4000/- रु.

• आप जैन धर्म के रहस्य, जैन इतिहास, जैन तत्त्वज्ञान, जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप **दिव्य संदेश प्रकाशन** मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 7 पुस्तकें दी जाएंगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तकें एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोड़कर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
बोरीवली, (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. प्रकाश बड़ोल्ला,
52, 3rd Cross,
शंकरमट रोड, शंकरपुरा,
बैंगलोर-560 004.
M. 8971230600

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 4000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :
(1) दिव्य संदेश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डिंग,
विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Mobile : 84 84 84 84 51 (only whatsapp)

प्रकाशक की कलम से....

परम शासन प्रभावक, व्याख्यान वाचस्पति, महाराष्ट्र देशोद्धारक पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.** के तेजस्वी शिष्यरत्न बीसवीं सदी के महान् योगी, निःस्पृह शिरोमणि पूज्यपाद पंन्यास प्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न मरुधर रत्न, गोड़वाड़ के गौरव, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, सरस्वती नंदन **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के संयम सुवर्ण वर्ष की अनुमोदनार्थ उनके द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित-संपादित **281वीं पुस्तक 'जिनवाणी का अमृत'** का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य पदारुढ होने के बाद महाराष्ट्र की पावन धन्य धरा पर विहार दरम्यान व्याख्यान वाचस्पति पूज्यपाद **आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा दिए गए प्रेरणादायी हृदय स्पर्शी प्रवचनों का संग्रह है।

हमारा सद्भाग्य है कि आज से 89 वर्ष पूर्व पूज्यपादश्री द्वारा दिए गए प्रवचन आज भी हमें उपलब्ध हो रहे है, उसका मुख्य श्रेय प्रवचनों के अवतरणकार ब्राह्मण श्रीयुत् लक्ष्मणराव रघुनाथजी भीडे को जाता है। जिन्होंने उस समय उन प्रवचनों को शब्द देह दिया था, उस समय वे प्रवचन गुजराती भाषा में उसी वर्ष छपे थे।

प्रवचनों के अवतरणकार लिखते है कि–``जन्म से ब्राह्मण ऐसे मुझे मोरगांव में हुए पूज्य आचार्यश्री के दो दिनों के प्रवचन श्रवण में मुझे बहुत ही आनंद आया ।

प्रश्नोत्तर श्रवण में मैं इतना लीन बन गया था कि उन प्रवचनों का पूर्ण आलेखन नहीं कर सका ।

इस प्रवचन सभा में अनेक धुरंधर ब्राह्मण पंडित भी थे जो खुले दिल से तात्त्विक चर्चा कर रहे थे और आचार्यश्री उनके प्रश्नों का सचोट जवाब दे रहे थे ।''

इन प्रवचनों का हिन्दी भावानुवाद, सरस्वती नंदन, प्रभावक प्रवचनकार पूज्यपाद आचार्य देव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. ने गुरु भक्ति से प्रेरित होकर खूब भाव से किया था, आज उनका पुनः प्रकाशन हो रहा है ।

नाभि से निकले परमाराध्यपाद पूज्यपादश्री के वे प्रवचन खूब प्रेरणादायी एवं हृदय को छू जाते हैं, हमें आशा ही नहीं, किंतु पूर्ण विश्वास है कि ये प्रवचन पाठको के हृदय को स्पर्शकर उन्हें सन्मार्ग की यह दिखाएगें ।



अनुवादक संपादक की कलम से

वि.सं. 1986 में माधव बाग-लालबाग, मुंबई में सकलागम रहस्यवेदी **पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय दानसूरीश्वरजी म.सा.** की तारक निश्रा में प्रवचन प्रभावक **पू.मु. श्री रामविजयजी म.सा.** के भगवती सूत्र के योगोद्वहन चल रहे थे ।

चातुर्मास की पूर्णाहूति के बाद **सेठ मोतीशा जैन मंदिर-भायखला** के प्रांगण में **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय दानसूरीश्वरजी म.सा.** की शुभ निश्रा में जिन भक्ति महोत्सव का त्रिवेणी संगम रचा गया ।

एक ओर अनुयोगाचार्य **पू.पं. श्री प्रेमविजयजी म.** की **'उपाध्याय'** पदवी का निर्णय हुआ था, दूसरी ओर प्रवचनकार **पू.मु. श्री रामविजयजी म.** की गणि एवं पंन्यास पदवी निश्चित हुई थी । उसके साथ ही **भगवानदासभाई** आदि पांच भाइयों की भागवती-दीक्षा भी निश्चित हुई थी ।

उपाध्याय, गणि-पंन्यास एवं पांच-दीक्षाओं के पावन प्रसंग पर सकलागम रहस्यवेदी **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय दानसूरीश्वरजी म.सा.** ने नूतन **पंन्यास श्री रामविजयजी गणिवर्य** को **'व्याख्यान-वाचस्पति'** पद से भी विभूषित किया ।

व्याख्यान वाचस्पति **पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री रामविजयजी गणिवर्य** के वैराग्य पोषक एवं मोक्ष मार्ग प्रेरक प्रवचनों के प्रभाव से गुजरात व मुंबई में सैकडों

लोग सन्मार्ग की आराधना में जुडें । कर्म साहित्य निष्णात **पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी म.** ने वि.सं. 1992 वैशाख सुदी-6 के शुभ दिन उन्हें **(पूज्य पंन्यासश्री रामविजयजी म.)** को माधव बाग, लालबाग, मुंबई में **आचार्य पद** प्रदान किया । तब से वे **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के नाम से प्रख्यात हुए ।

आचार्य पदारूढ होने के बाद पूज्यपादश्री का महाराष्ट्र में पदार्पण हुआ । पूना, कराड, कोल्हापूर आदि क्षेत्रों में विचरण कर अद्भूत शासन-प्रभावना की ! जिसके फल स्वरूप उन्हें **'महाराष्ट्र देशोद्धारक'** का विरुद प्रदान किया गया । महाराष्ट्र प्रांत की धन्यधरा पर अपने जीवन काल में आपने 19-19 चातुर्मास एवं सुदीर्घ विचरण कर अपने **'विरुद'** को सफल व सार्थक किया ।

ऐसे महाराष्ट्र देशोद्धारक **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के महाराष्ट्र की धन्यधरा पर पूना से कराड की विहार यात्रा दरम्यान दिए हुए वैराग्य पोषक प्रवचनों का संकलन प्रस्तुत पुस्तक **'जिनवाणी का अमृत'** में किया गया है ।

इन प्रवचनों का अवतरण लक्ष्मणरावजी रघुनाथजी भीडे ने किया था । वे प्रवचन **'वीरशासन कार्यालय'** की ओर से सिर्फ 12 दिन बाद **'पूनाथी कराड सुधीना प्रवचनो'** के नाम से गुजराती में प्रकाशित हुए थे । 57 वर्षों के बाद पुनः **'प्रवचन प्रकाशन'** पूना की ओर से प्रकाशन हुआ था ।

पूज्यश्री के ये प्रवचन हिन्दी भाषी प्रजा को भी लाभदायी बन सके, इस ध्येय से मैंने उनका वि.सं. 2058 में हिन्दी भाषा में भावानुवाद किया था, जो

पार्श्वाभ्युदय प्रकाशन की ओर से प्रकाशित हुए थे ।

सांप का जहर तो एक ही जीवन का अंत लाता है, परंतु मोह का जहर आत्मा को भवोभव तक भटकाता है ।

मोह के जहर को उतारने का काम **'जिनवाणी'** करती है ।

सचमायने में पूज्यपाद श्री जिनवाणी के जादूगर थे । प्रभु के वचनों को सरल व सुबोध शैली में वे इस तरह प्रस्तुत करते थे कि जिससे अनेकों का मोह का जहर उतर जाता था ।

ये प्रवचन आज भी उतने ही प्रासंगिक है, इस भावना को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुनः संस्कारित कर प्रकाशित कर रहे है ।

पाठक वृंद इन प्रवचनों का स्वाध्याय कर प्रभु वीर के मार्ग का अवश्य अनुसरण करेंगें इसी आत्म विश्वास के साथ !

प्रेमसूरि गुरु मंदिर
पिण्डवाडा (राज.)
दि. 20-9-2026

निवेदक
अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य
कृपाकांक्षी
आचार्य रत्नसेनसूरि

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ.सं.
1.	कल्याण मार्ग	1
2.	विवेकी बनो	8
3.	आत्म-कल्याण के उपाय	14
4.	धर्म का ध्येय	21
5.	दु:ख का मूल–जड़ का योग	25
6.	धर्म से सुरक्षा	32
7	चार पुरुषार्थ	40
8.	सच्चे सुख की साधना	53
9.	मानव भव की सार्थकता	60
10.	मोह छोडो	66
11.	धर्म की आवश्यकता	69
12.	सच्चे जैन बनो	75
13.	पाप त्याग और धर्मराग	85
14.	पाप से डरें	97
15.	आत्मवादी बनो	108
16.	मानव जीवन की सार्थकता	115
17.	अन्तर्दृष्टि खोलो	120
18.	आत्मा को पहचानो	128
19.	आत्म–धर्म	131
20.	सच्चा–धर्म	142
21.	पाप का मूल	152
22.	प्रवचन-मोती	160

1

कल्याण मार्ग

हडपसर **पोष कृष्णा 8, वि.सं. 1994,**
दि. 23-01-1938, रविवार

इस दुनिया मे मनुष्य मात्र की इच्छा अपना कल्याण करने की है । दुनिया में लोग भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति करते हैं, परंतु अपनी अपनी प्रवृत्ति के फल स्वरूप सभी अपना **'कल्याण'** चाहते हैं ।

धर्मी व्यक्ति धर्म करता है, उसमें भी उसकी भावना अपने कल्याण की है और पापी व्यक्ति पाप करता है उसमें भी इसकी इच्छा तो अपना भला करने की ही होती है । साधु-संत का भी उद्देश्य अपना कल्याण करने का है और संसारी जीवों का भी उद्देश्य अपना कल्याण करने की है ।

दुनिया में जो जो इच्छा कर सकते हैं और समझपूर्वक सुख-दुःख का अनुभव कर सकते हैं, वे सभी जीव किसी भी उपाय से अपना कल्याण चाहते हैं और कल्याण की इच्छा से ही सभी प्रकार की प्रवृत्तियाँ करते हैं ।

हर व्यक्ति अपनी अपनी समझ और सामग्री के अनुसार प्रवृत्ति करता है । कल्याण की इच्छा सभी की होने पर भी सभी की प्रवृत्तियाँ एक मार्गीय नहीं होती है अतः बहुत थोडे लोग ही अपना कल्याण साध सकते हैं ।

अधिकांश लोक कल्याण की कामना से अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करते हैं, वे प्रवृत्तियाँ वस्तुतः कल्याणकारिणी नहीं, किंतु अकल्याणकारिणी होने से उसका परिणाम यह आता है कि सुख दूर ही रह जाता है और दुःख बढ जाता है ।

सच्ची दया किसके अन्तर में पैदा होती है ? :–

दुन्यवी जीवों की इस दुर्दशा को देखकर सच्चे ज्ञानियों को बहुत दया आती हैं और **'दुनिया के लोग कल्याण के सच्चे मार्ग को समझकर उस मार्ग पर चलने के लिए प्रयत्नशील बनें ।'** ऐसा प्रयत्न करने की प्रेरणा जगती है । सुख के लिए प्रयत्नशील जीवों से सुख दूर रह जाय और उनके दुःख में वृद्धि हो जाय, यह देख किसे दया नहीं आएगी ?

सभा में से–सभी को दया आती है ।

पूज्यपादश्रीः सब को नहीं किंतु जिसके दिल में सच्ची समझ हो उसको आती हैं । अज्ञानता के कारण सुख का ईरादा होने पर भी दुःख को बढानेवाली प्रवृत्ति होती है । उसी प्रकार दुःख बढने पर भी उसमें सुख की भ्रांतिवालें अज्ञानी जीवों की इस संसार में कमी नहीं है । ऐसे अज्ञानी जीवों में जगत् के जीवों की सच्ची दया प्रकट नहीं होती है ।

जगत् के जीवों की सच्ची दया उन्हीं पवित्र आत्माओं के भीतर पैदा होती है, जिन्हें सच्चे सुख के वास्तविक साधनों का ज्ञान होता है ।

सुख-दुःख के वास्तविक स्वरूप को जो नहीं जानते हैं, सुख-दुःख के सच्चे निदान से जो अज्ञात होते हैं, उनके हृदय में, सुख के ईरादे से रात-दिन मेहनत कर भी दुःख में वृद्धि करनेवाले दुःखी जीवों के प्रति दयाभाव पैदा नहीं होता है ।

सुख-दुःख का सच्चा स्वरूप और निदान ख्याल में आए तभी सुखी होने के लिए दिन-रात प्रयत्न करने पर भी दुःखी होनेवाले जीवों की दया आती है । परंतु इस दुनियाँ में सुख-दुःख के स्वरूप और उसके निदान को अच्छी तरह से समझनेवाले जीव बहुत थोडे होते है ।

परमात्मा का स्वरूप :–

सुख-दुःख का स्वरूप और उसका वास्तविक निदान अनंतज्ञानी परमात्मा ने बताया है । अनंतज्ञानी परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट स्वरूप को जानकर जगत् के जीव मात्र के प्रति अत्यंत करूणाशील बनी आत्माएँ सच्ची करुणा भावना के प्रकर्ष से महा पुण्य उपार्जित करती हैं । जगत् में विरल आत्माएँ ही ऐसे महापुण्य का उपार्जन कर पाती है । उस महापुण्य

के योग से उन पुण्यात्माओं का अंतिम भव के लिए च्यवन और जन्म आदि भी उत्सव रूप बन जाता है और कल्याण का कारण बनता है । वे पुण्यात्माएँ अपने अंतिम च्यवन से ही ज्ञानप्रधान जीवन जीनेवाले होते हैं, उनका जीवन औचित्य से भरा होता हैं । उचित समय में वे दीक्षित बनते हैं और ध्यानानल द्वारा इन्द्रियों की वासना और क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि का सर्वथा नाश कर वीतरागता और अनंतज्ञान प्राप्त करते हैं । उस समय जगत् के जीवमात्र के प्रति अत्यंत करूणाशील बनने से उपार्जित पुण्य, तीव्र भाव से प्रकट होता है । इसके परिणाम स्वरूप जगत् के कई जीव दुःख के मार्ग से पीछे हटकर सच्चे सुख के मार्ग में आगे बढ़कर सदा के लिए दुःख मुक्त बनते हैं और शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं ।

इस प्रकार महापुण्य का उपार्जन कर स्वयं वीतराग और अनंतज्ञानी बनकर सच्चे सुख का मार्ग बताकर अनंत आत्माओं को तारनेवाले ही सच्चे परमात्मा है ।

परमात्मा में राग-द्वेष नहीं होते हैं । वे पूजा से प्रसन्न नहीं होते हैं और निंदा से कूपित भी नहीं होते हैं ।

अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा ने कल्याण का सच्चा मार्ग बतलाया है, परंतु जगत के अधिकांश जीवों को उसका ख्याल नहीं है । इस कारण कल्याण की अभिलाषा सभी जीवों में होने पर भी तथा कल्याण प्राप्ति के ध्येय से मनवचन-काया से प्रबल प्रयत्न करने पर भी अधिकांश जीव कल्याण से वंचित रह जाते हैं ।

'अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा की शरणागति का स्वीकार'–यही कल्याण का सच्चा मार्ग है ।

आप कहेंगे–**'हम परमात्मा के नाम का स्मरण करते हैं और परमात्मा की पूजा भी करते हैं ।'**

परंतु परमात्मा का थोडा स्मरण कर ले और दिन में एक बार पूजन भी कर लेते हैं, परंतु इतने मात्र से ही कल्याण की अभिलाषा फलीभूत नहीं होती है ।

परमात्मा की आज्ञा के अनुसार जीवन जीने के लिए कटिबद्ध होना, यही परमात्मा का वास्तविक पूजन है ।

उन तारक परमात्मा के स्वरूप को जानकर परमात्मा के गुणों से रहित नामधारी देवों की सेवा को त्याग कर एक मात्र राग-द्वेष रहित अनंतज्ञानी परमात्मा का, परमात्मा के रूप में स्वीकार करना और उनकी आज्ञा के पालन में ही अपनी शक्ति लगाना, यही आत्म-कल्याण का सच्चा मार्ग है ।

सच्चा सुख आत्मा में है :–

तारक परमात्मा ने कहा है–`दुनियाँ के नाशवंत पदार्थों में सच्चा व स्थायी सुख देने की ताकत नहीं है । नाशवंत पदार्थों के संयोग से प्राप्त सुख भी नाशवंत होता है ।

नाशवंत वस्तु के योग से प्राप्त सुख में मोहित होनेवाले सच्चे सुख को पहचानते नहीं हैं । वे नाशवंत वस्तुओं को पाने के लिए, भोगने के लिए और उसके संरक्षण में इतने अधिक पाप करते हैं कि वे क्षणिक सुख के बदले भयंकर दुःख ही प्राप्त करते हैं ।

इस कारण जो सुख क्षणिक हो और परिणाम स्वरूप भयंकर दुःखों का कारण हो, इस सुख को कोई भी समझदार व्यक्ति सुख नहीं कहेगा । इस कारण परम उपकारी ज्ञानी भगवंत कहते हैं–

'संसार दुःखमय है, दुःख परंपरक है और दुःखफलक है । आत्मा में ही सच्चा सुख रहा हुआ है । जो आत्मा संसार से मुक्त बनती है, वह आत्मा अपने भीतर रहे सुख को प्रकट करती है । वे ही आत्माएं सच्चे और स्थायी सुख का भोगकर सकती है ।'

प्रभु की आज्ञा का पालन करे :–

अपनी आत्मा को संसार से मुक्त बनाने के लिए परमात्मा ने जो उपाय बतलाया है, उसे हम धर्म कहते है ।

धर्म अर्थात् दुःख मुक्त बनने तथा आत्मा में रहे अनंत सुख को प्रकट करने का उपाय !

परम उपकारी ज्ञानी भगवंत फरमाते हैं–कि अपने कल्याण की कामना को पूर्ण करने के लिए अन्य सभी उपायों का त्याग कर एक मात्र धर्म का ही सेवन करना चाहिये । धर्म को छोड अन्य जितने भी उपाय हैं, वे प्रयत्न पाप-स्वरूप होने से उनसे कल्याण नहीं होता है बल्कि अकल्याण में

ही वृद्धि होती है । अतः कल्याण की कामना हो तो पाप-प्रयत्नों से पीछे हटकर परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट सद्धर्म के आचरण में अप्रमत्त बनना चाहिये ।

एक ओर परमात्मा के नाम का थोडा स्मरण कर लेना और एक-दो बार पूजन कर लेना तथा दूसरी ओर पाप से डरना नहीं और पाप में सदा रक्त रहना, यह योग्य नहीं है ।

अपना कल्याण करने के लिए परमात्मा के नाम स्मरण, तथा पूजन के साथ परमात्मा की आज्ञाओं को समझकर उसे जीवन में आत्मसात् करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये ।

गुरू का स्वरूप :–

परमात्मा तो कल्याण का मार्ग बताकर चले गए परंतु उस मार्ग का मर्म समझाकर उस मार्ग पर चलने में सहायता करनेवाले गुरू भगवंत हैं ।

कंचन–कामिनी के त्यागी हो, मादक पदार्थ और अन्य व्यसनों से रहित हो, हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन तथा परिग्रह आदि से मुक्त हो, आत्मा के सच्चे सुख को प्रकट करने के लिए परमात्मा की आज्ञानुसार संयम जीवन जीनेवाले हो, निर्दोष भिक्षा से जीवन निर्वाह करते हो, और जगत् के जीवों को परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का उपदेश करनेवाले हो, उन्हें गुरू कहते है । ऐसे गुरूओं की निश्रा स्वीकार कर नामधारी गुरू अर्थात् जो गुरूपद के लिए अयोग्य हैं, उनका त्याग करना चाहिये ।

जिस प्रकार नामधारी देव का त्याग कर जो अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा हो, उन्हीं को देव के रूप में स्वीकार करने का है । उसी प्रकार जो नामधारी गुरू हो, उनका त्याग कर अनंतज्ञानी की आज्ञानुसार निर्ग्रंथ रूप से विचरण करनेवाले को ही गुरू के रूप में स्वीकार करना चाहिये ।

अनंतज्ञानी की आज्ञा ही धर्म है, शेष सब अधर्म है । अन्य सब धर्म कहलाते हैं किंतु उनमें धर्मत्व नहीं ।

देव और गुरू का स्वरूप कहा गया, उसके आधार पर धर्म का स्वरूप समझ सकते है ।

धर्म से ध्यान क्या ? परमात्मा स्वरूप ! परमात्मा स्वरूप अर्थात्

पांचों इन्द्रियों की विषय वासना का सर्वथा अभाव, क्रोध, मान, माया और लोभ से सर्वथा मुक्ति और राग-द्वेष का संपूर्ण क्षय ।

ऐसे स्वरूप की प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिये ? हिंसा का त्याग, असत्य का त्याग, चोरी का त्याग, मैथुन का त्याग और परिग्रह का त्याग ।

यह त्याग मन से करे, वचन से करे और काया से भी करे ।

इतना ही नहीं किंतु ये हिंसा आदि पाप किसी के पास कराए भी नहीं और हिंसादि पाप करनेवाले की अनुमोदना भी न करे ।

इस प्रकार के आचरण के लिए स्वजनों का त्याग करे, घर का त्याग करे, इन्द्रिय-निग्रह करे और तपोमय जीवन जीए ।

इस प्रकार के उच्च जीवन जीने की जिसमें शक्ति न हो, वह देव-गुरू-धर्म पर श्रद्धा रखकर, शक्ति अनुसार हिंसा आदि पापों से निवृत्त बने, संयम के अभ्यास रूप अनुष्ठानों के आचरण में प्रयत्नशील बने तथा परमात्मा की आज्ञा में तीव्र रस पैदा करने के लिए परमात्मा का पूजन आदि करे क्योंकि पाप के त्याग और धर्म के आचरण बिना सच्ची शांतिवाला सुख मिलता नहीं है । पाप का भय पैदा हो और धर्म में रस बढे, तभी दुःख मुक्ति और सुख प्राप्ति संभव है ।

सच्चे उपकारी :–

वस्तुस्थिति को समझे बिना जगत् पर उपकार करने के लिए निकल पडनेवाले उपकार के बदले अपकार ही करते हैं ।

नाशवंत पदार्थों के मोह में जोडनेवाले सच्चे उपकारी नहीं हैं । उपकार करना हो तो सुख-दुःख के निदान को पहले समझना चाहिये । इस स्थिति का ख्याल हो तो शहेनशाह के सुख भी दुःख रूप लगते है, परिणाम स्वरूप दुन्यवी पदार्थों की ममता घटती है, ममता घटने से उन पदार्थों को पाने की लालसा, उन पदार्थों को संभालने और भोगने में जो पाप होते है, वे रुक जाते हैं ।

इस जगत् में सच्चे उपकारी वे ही है जो परमात्मा की आज्ञा अनुसार निर्ग्रंथ के रूप में विचरते हैं और जगत के जीवों को परमात्मा द्वारा

निर्दिष्ट दुःख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति का उपाय बताते हैं । इससे विपरीत रूप से आचरण करनेवाले सच्चे उपकारी नहीं होते हैं, बल्कि अपकारी होते हैं ।

जो परमात्मा की आज्ञा को समझाते हैं और उस आज्ञानुसार जीवन जीने की प्रेरणा करते हैं–यही उपकारी की संक्षिप्त व्याख्या है । दूसरे भी उपकारक हो सकते है, लेकिन ऐसे उपकारिओं की अपेक्षा उनकी कक्षा हीन होती है ।

आप लोग इन वस्तुओं को समझने के लिए प्रयत्न करो और प्रभु की आज्ञानुसार जीवन निर्माण करने में अप्रमादी बनो, क्योंकि आप लोग रात-दिन कल्याण की झंखना करते हैं । यह बात स्पष्ट है कि प्रभु की आज्ञानुसार जीवन जीए बिना पाप के त्याग और धर्म के आचरण बिना कल्याण होनेवाला नहीं है । धर्म ही कल्याण का सच्चा उपाय है ।

सभा में से :– पूर्व पुण्य बिना धर्म कहां होता है ?

पूज्यश्रीः पूर्व के पुण्योदय से धर्म की सामग्री सरलता से मिलती है, परंतु इस जीवन में धर्म करने का परिश्रम तो स्वयं को ही करना पडता है । योग्यता पाने के लिए प्रयत्न करे । धर्म के आचरण में निरंतर पुरुषार्थ करना चाहिये ।

पूर्व के पुण्य से ही आर्यदेश मिला है और यह सब योग मिला है । ऐसा समझकर पाप के त्याग और धर्म के आचरण में तत्पर बनो !

जो आत्माएँ प्रभु आज्ञानुसार पाप का त्याग और धर्म का आचरण करेगी, उनका अवश्य कल्याण होगा ।

आप सभी परमात्मा की आज्ञानुसार पाप के त्यागी बनो और इस प्रकार संपूर्ण, स्थायी और दुःख रहित सच्चे सुख के भोक्ता बनो, यही एक शुभाभिलाषा ।

2

विवेकी बनो

फुरसंगी

पोष कृष्णा 9, वि.सं. 1994,
दि. 24-01-1938, सोमवार

दुनिया के प्राणीमात्र के प्रति करुणाबुद्धि के कारण जिन्होंने अनुपम पुण्य का उपार्जन किया, जिसके फलस्वरूप तीसरे भव में घातिकर्मों का क्षय कर जिन्होंने वीतरागता और अनंतज्ञान प्राप्त किया । ऐसे अनंतज्ञानी तारक परमात्मा जगत् के जीवों को सच्चे सुख का मार्ग बताते हुए फरमाते हैं–**कि इस दुनिया में ऐसी कोई भौतिक वस्तु नहीं है जो हमें संपूर्ण और सच्चा सुख प्रदान करने में समर्थ हो ।**

दुःख से मुक्ति और सुख की प्राप्ति का एकमात्र उपाय धर्म ही है । दुःख किसी को पसंद नहीं है और सुख सभी को पसंद है, अतः दुनिया के लोग कुछ न कुछ प्रवृत्ति तो करते ही हैं परंतु उपकारी ज्ञानी महापुरुष फरमाते हैं कि यदि वह मेहनत धर्मात्मक नहीं है तो उससे लाभ होना तो दूर रहा बल्कि नुकसान ही होता है ।

मेहनत करने मात्र से ही कार्यसिद्धि नहीं होती है, बल्कि विवेकपूर्वक मेहनत करने से ही कार्यसिद्धि होती है ।

मेहनत करनेवाला विवेकी न हो तो उसकी मेहनत निष्फल ही जाती है और नुकसानकारक भी बनती है । दुन्यवी लोग दुःख से संतप्त व सुख के तीव्र अर्थी होने से मेहनत तो करते ही है परंतु वह मेहनत विवेकशून्य होने से सफल नहीं होती हैं, बल्कि कुपथ्य के सेवन की भांति नुकसानकारी ही होती है ।

एक विवेक की कमी के कारण दुन्यवी लोग दयनीय स्थिति का अनुभव कर रहे हैं । जो विवेकशून्य मेहनत हो रही है, उसके बजाय उतनी

मेहनत विवेकपूर्वक हो तो अल्प समय में ही व्यक्ति दुःख से मुक्त हो सकता है और पूर्ण सुख प्राप्त कर सकता है ।

दुन्यवी जीवों की अनंतकाल से हो रही मेहनत निष्फल जाने का एक मात्र कारण विवेकशून्यता हो ।

इस विवेकशून्यता के कारण सुख के लिए तरसते हुए और रात-दिन मेहनत करने पर भी दुःख के भार से लदे हुए जीवों को देखकर उपकारी महात्माओं के हृदय में बहुत दया भाव पैदा होता है । उस दया भाव के कारण वे दुन्यवी जीवों को विवेकी बनने की प्रेरणा करते हैं ।

'पाप के कारण दुःख आता है' इस बात को कौन नहीं जानता है ? आर्य देश के थोडे बहुत भी संस्कार जिनमें हो, वह इतना तो जानता ही है कि **पाप बिना दुःख नहीं और धर्म बिना सुख नहीं ।**

इतना जानने पर भी सुख पाने के लिए जो पाप करता है, क्या यह विवेकशून्यता नहीं हैं ?

इस विवेकशून्यता का निर्धार किया जाय तो आज अधिकांश भाग विवेकशून्य दिखाई देगा ।

वो ही व्यक्ति विवेकी कहलाता हैं जो 'दुःख का जन्मस्थान पाप है' यह जानने के बाद पाप से डरने लगे तथा संयोगवश पाप करना पडे तो हृदय में आघात लगे बिना न रहे ।

सुख की चाह तो आप सभी को हैं, परंतु क्या आपकी दशा विवेकवाली हैं ? वह देखो ! विवेक-शून्यता दूर कर दो और विवेकमय जीवन जीना चालू कर दो तो दुःख दूर हुए बिना नहीं रहेगा और सुख प्राप्त हुए बिना नहीं रहेगा ।

दुनिया का सुख, दुःख रूप है :–

एक प्रश्न खडा होता है–**'पाप से दुःख आता है'**–यह जानने पर भी अधिकांश लोग पाप का आदर क्यों करते हैं ?

इसका जवाब है–**'दुन्यवी पदार्थों में सुख की कल्पना की है, इस कारण पाप का आदर करते हैं ।'**

ज्ञानी फरमाते हैं कि दुन्यवी पदार्थों के योग से कुछ भी सुख नहीं मिलता है, ऐसा नहीं है किंतु वह सुख विष-युक्त दुध समान है। अल्पकाल के लिए आनंद किंतु परिणाम में भयंकर विनाशकारक वह सुख है। इस कारण ज्ञानी महापुरुष उस सुख को सुख न कहकर दुःख रूप मानने का उपदेश देते हैं। समस्त पौद्गलिक सुखों को दुःखरूप मानकर आत्मसुख पाने के लिए धर्म का सेवन करने का निर्देश देते हैं।

सच्चे सुख का अनुभव :–

उत्तम धर्म के आचरण के लिए हिंसा, असत्यवाद, अदत्तादान, अब्रह्म तथा परिग्रह का त्याग करना चाहिये। हिंसा आदि ये पाप, दुःख के मूल है। अतः दुःख से बचने के लिए पाप का त्याग करना चाहिये। शाश्वत सुख आत्मा में रहा होने से आत्मा के स्वभाव को पहचान कर, उस स्वभाव को प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिये।

आत्मा का स्वभाव अनाहारी है। अतः जीवन को तपोमय बनाकर अनाहारी बने रहने का अभ्यास करना चाहिये।

आत्मा का स्वभाव राग-द्वेष से रहित है, अतः राग-द्वेष से पर बनने के लिए क्षमा और समता धारण करनी चाहिये।

राग-द्वेष को दूर करने के लिए पहले राग-द्वेष को प्रशस्त बनाना चाहिये और गुण-राग और अवगुण-द्वेष इन दो गुणों को आत्मसात् करना चाहिये।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र यह आत्मा का स्वभाव है। अतः अप्रमत्त भाव से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना के लिए अपनी आत्मा को जोडना चाहिये।

इस प्रकार के आचरण से आत्म-स्वभाव प्रकट होता जाएगा, जिसके फल स्वरूप आत्मा के सच्चे सुख का आंशिक अनुभव होने लगेगा। इस प्रकार की मेहनत ही विवेकपूर्वक की मेहनत है। अनंतकाल से अपनी आत्माने विवेकशून्य मेहनत की है, इस कारण दुःख से मुक्त नहीं बनी है और सच्चे सुख को पा नहीं सकी है। अतः अनंतज्ञानी के वचन पर विश्वास रख कर इस जन्म में तो विवेकपूर्वक मेहनत करके देख ले।

साधुधर्म और गृहस्थ धर्म :–

आत्म-स्वभाव की प्राप्ति के लिए पाप मात्र से निवृत्त होकर संयम और तप का विशिष्ट सेवन अत्यावश्यक है, परंतु गृहस्थ-जीवन में ऐसा उत्तम जीवन जीना संभव नहीं है । इसलिए सर्वश्रेष्ठ उपाय तो संसार का त्याग कर दीक्षा स्वीकार करना तथा दीक्षा स्वीकार करने के बाद अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा की आज्ञानुसार निर्ग्रंथपने के पालन में अपनी शक्ति का सद्व्यय करना है ।

जो आत्माएँ इसी तरह संसार का संपूर्ण त्याग कर साधुधर्म के पालन में असमर्थ हो, वे आत्माएँ भी देश से (आंशिक) हिंसा आदि पापों का त्याग कर सकती है ।

गृहस्थ के लिए दूसरा कोई धर्म नहीं है । धर्म तो जो हैं, वो ही हैं, परंतु गृहस्थ सर्वथा धर्म का पालन नहीं कर सकते हैं अतः उन्हें देश (आंशिक) से बतलाया गया है और उसी को गृहस्थ धर्म कहा है ।

गृहस्थ धर्म का पालन करनेवाले का भी ध्येय तो उच्चकोटि के धर्म का पालन करने का ही होना चाहिये । जितने अंश में धर्म का पालन न हो उतने अंश में अपनी पामरता समझकर अपने सत्त्व गुण को विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

संसारत्यागी बनकर संयम-धर्म की आराधना का सामर्थ्य न हो तो भी **'धर्म तो संसार त्याग में ही हैं'–** ऐसा मानकर संसार के प्रति उदासीन बनना चाहिये ।

मदारी साँप से आजीविका चलाता है, किंतु कितना सावधान रहता है ! वह साँप का जहर निकाल देता है, फिर भी वह साँप नुकसान न पहुँचाए, इसलिए सावधान रहता है ।

जरूरत पडने पर व्यक्ति विषैली दवाई का भी उपयोग करता है परंतु वह जहर पेट में न चला जाय, इसके लिए सावधान रहता है । इसी प्रकार संसार से भय लग जाना चाहिये **'संसार के सुख भी दुःख रूप लगने चाहिये ।' पौद्गलिक वासनाएँ आत्महित के लिए विषतुल्य है । यह ख्याल सतत रहना चाहिये ।**

आत्म-स्वभाव को प्रकट करने में सहायक प्रवृत्तियों में रस पैदा करना चाहिये और आत्महित बाधक प्रवृत्तियों में से रस उड जाना चाहिये । इस प्रकार करने से ही दुःख मुक्ति और सुख प्राप्ति हो सकती है ।

इसके बिना अनंतकाल से दुःख का अनुभव करते आए हैं और ज्ञानी की आज्ञानुसार धर्म में प्रयत्न नहीं होगा तो भविष्य भी दुःख सहन करना पड़ेगा ।

'पाप बिना दुःख नहीं है और धर्म बिना सुख नहीं है ।' ऐसा बोलने वालों की दुनिया में कमी नहीं है, परंतु **'पाप बिना दुःख नहीं और धर्म बिना सुख नहीं'** इस बात को हृदय से स्वीकार कर जीवन में आचरण में लानेवाले बहुत थोडे लोग हैं । उसमें भी धर्म और पाप के वास्तविक स्वरूप को समझनेवाले बहुत कम हैं ।

दुनिया में अधिकांश लोग पाप से डरते नहीं हैं, पाप करने से पीछे नही हटते हैं, इतना होने पर भी वे अपने आपको पापी नहीं मानते हैं । हित बुद्धि में कोई पापी कहे तो भी सहन नहीं होता हैं । ऐसी स्थिति में दुःख कहां से जाय और सुख की प्राप्ति भी कहाँ से हो ?

क्या ऐसे व्यक्ति देव-गुरू को मानते हैं ? देव के नाम का जाप और पूजा करते हो तथा गुरूओं का स्वागत आदि करते हो, इतने मात्र से वे देव-गुरू को मानते हैं, ऐसा मानने योग्य नहीं है । कई लोग मंदिर में जाकर प्रभु के दर्शन व पूजन करते हैं, परंतु प्रभु को मानते नहीं हैं, साधुओं की भक्ति करते हैं परंतु साधु के उपासक नहीं है, धर्म की बातें करते हैं और थोडी सी धर्मक्रियाएं भी करते हैं, परंतु सच्चा धर्म उन्हें पसंद नहीं है ।

प्रभु को माननेवाला प्रभु आज्ञा की अवगणना कैसे कर सकता है ? प्रभु की आज्ञानुसार आचरण करने की तैयारी, यही सच्ची प्रभु पूजा है ।

साधु का सेवक साधुता का अर्थी न हो, यह कैसे हो सकता है ? कदाचित् साधु न बन सके यह हो सकता हैं किंतु साधुता का अर्थी ही न हो, यह कैसे बन सकता है ?

किसी भी आत्मा को संसारत्यागी बनकर प्रभु की आज्ञा की आराधना करते हुए देखकर साधु का सेवक अवश्य प्रसन्न होता है । वह दीक्षा लेनेवाले की नहीं किंतु स्वयं की दया सोचता है । इस प्रकार धर्म को माननेवाला पाप से डरनेवाला न हो, यह नहीं हो सकता । इस बात से तय कीजिए कि आप देव-गुरू-धर्म के सच्चे उपासक हो यो नहीं ?

पाप की जड़ मिथ्यात्व :–

यदि आप मानते हो कि **'पाप से दुःख पैदा होता है और धर्म से सुख मिलता है'** तो पाप से छूटने और धर्म के आचरण में लेश भी प्रमाद नहीं करना चाहिये । पाप की जड़ मिथ्यात्व है । मिथ्यात्व अर्थात् जो जैसा है, उसे उससे विपरीत मानना ।

दुन्यवी पदार्थों में सुख देने की ताकत नहीं है, फिर भी उनमें सुख देने की ताकत है, ऐसा मानना मिथ्यात्व है । उस मिथ्यात्व के कारण ही हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह के भयंकर पाप हो रहे हैं । उस मिथ्यात्व के कारण ही व्यक्ति धर्म से दूर रहता है ।

दुःखमुक्ति और सुख प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम मिथ्यात्व को दूर करना चाहिये और देव-गुरू-धर्म के सच्चे उपासक बनना चाहिये । जो कोई पुण्यात्मा इस प्रकार का आचरण करेगा, उसका कल्याण निश्चित है । सभी इस प्रकार का आचरण कर अपना आत्म कल्याण करे, यही शुभेच्छा ।

3

आत्म-कल्याण के उपाय

उरली **पोष कृष्णा 10, वि.सं. 1994,**
दि. 26-01-1938, बुधवार

दुनिया के सभी प्राणी सुख चाहते हैं परंतु प्रवृत्ति तो ऐसी ही कर रहे है कि जिससे दु:ख ही बढ़ता है।

सभी जानते हैं कि बाग-बगीचा, बंगला व पेढ़ी तथा जमीन पैसे आदि सभी वस्तुएँ मृत्यु के बाद साथ में आनेवाली नहीं है । इतना ही नहीं, अपने शरीर को भी यहीं छोड़कर जाना है– इतना जानने पर भी अपने शरीर के पालन पोषण तथा दुन्यवी भौतिक वस्तुओं को पाने के लिए सभी जीव न्यूनाधिक अंश में पापाचरण करते हुए डरते नहीं हैं ।

कई लोग कहते हैं– **'हमारे में पाप छोड़ने की ताकत नहीं है ।'** परंतु वे ही पाप की प्रवृत्ति में अपनी पूरी ताकत लगाते हैं । इससे क्या सिद्ध होता है ? यदि यह दंभ ही हो तो उस दंभ को दूर करना चाहिये । झूठा बचाव करने से पाप घटनेवाला नहीं है, बल्कि बढ़ता ही है । भूल होने के बाद भूल को स्वीकार करना ही चाहिये ।

कई लोग कहते हैं - **'हम क्या करें ? ईश्वरने हमें ऐसी बुद्धि दी है, जिस कारण हम पाप करते हैं ।'** इस प्रकार कहकर वे लोग अपने पाप का बचाव करने के लिए निरर्थक ही परमात्मा को कलंकित करते हैं।

वास्तव में देखा जाय तो परमात्मा ने किसी को कुछ भी नहीं दिया है, बल्कि परमात्मा ने तो जगत के जड़ व चेतन पदार्थों का जो स्वरूप था, है और रहनेवाला है, वह बतलाया है । जगत् के यथार्थ स्वरूप का भान कराकर परमात्मा ने जगत् के जीवों को सच्चे सुख का मार्ग बताया है । परमात्मा न तो जगत् के सर्जक हैं और न ही विध्वंसक हैं । जगत के सभी

जीव अपने किए हुए कर्मों का फल ही प्राप्त करते हैं । **जो पाप करता है, उसी को उस पाप की सजा होती है ।**

परमात्मा किसी जीव में पाप बुद्धि या धर्म बुद्धि पैदा नहीं करते हैं । वे तो पाप और धर्म का स्वरूप बताते हैं । वे कहते है– **'पाप से विमुख बनो और धर्म के सम्मुख बनो, यही कल्याण का मार्ग है ।'**

मनुष्य के जीवन में जब आपत्ति आती है, तब वह ईश्वर को दोष देता है, परंतु वह समझता नहीं है कि पहले मैंने पाप किया है, उसी का यह फल है ।

दुःख आने पर ईश्वर को दोष देनेवाले भी सुख आने पर अपनी होशियारी का घमंड करते हैं, इतना ही नहीं, वे ईश्वर को याद करना भी भूल जाते हैं । दुनिया के जीवों की यह विचित्र दशा है ।

सभी को यह समझना चाहिये कि अपने सुख और दुःख के सर्जक हम स्वयं हैं । पाप का फल दुःख है और धर्म का फल सुख है । दुःख पसंद नहीं है तो पाप छोड़ना चाहिये और सुख पसंद है तो धर्म के आचरण में अपनी शक्ति लगानी चाहिये ।

ध्यान रहे– सुख दुन्यवी वस्तुओं में नहीं है, वह तो आत्मा में रहा हुआ है । यह बात स्वानुभव सिद्ध है ।

एक ही वस्तु किसी व्यक्ति के लिए सुखदायक लगती है, वोही वस्तु दूसरे व्यक्ति के लिए दुःखदायक भी लगती है । इस सुख-दुःख के अनुभव में मनुष्य की मनोवृत्ति ही मुख्य कारण है ।

दुःख के संयोगों में भी सुख का अनुभव किया जा सकता है, यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है ।

इससे स्पष्ट हैं कि सुख आत्मा में ही रहा हुआ है, परंतु आत्मा के स्वभाव पर आवरण खड़ा किया होने से हमें वास्तविकता का ख्याल नहीं आता है ।

भाग्य से ही सुख की प्राप्ति, भोग और सुरक्षा :–

उपकारी महापुरुषों ने हमें आत्मा के मूल स्वरूप के प्रकट करने का मार्ग बताया है, उसी का नाम धर्म है । आत्मा के स्वरूप को प्रकट करने के ध्येय से ही धर्म आचरण करना चाहिये ।

दुन्यवी वस्तुओं में सुख देने की शक्ति होती तो वे चीजें किसी को सुखदायी और किसी को दुःखदायी नहीं बनती । इतना ही नहीं दुन्यवी वस्तुएँ चाहे जितनी मेहनत और पाप करके प्राप्त की हो तो भी उनकी सुरक्षा और उनका भोग तुम्हारी इच्छा के अधीन नहीं है ।

मेहनत और पाप करने पर भी जिसका भाग्य होता है, उसी को दुन्यवी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं । दुन्यवी वस्तु मिलने के बाद भी जिसका भाग्य हो, वो ही व्यक्ति उसे भोग सकता है । भाग्य में न हो तो देनदार कर्ज न चुकाए, घर में चोरी हो जाय । खेती-व्यापार में नुकसान हो जाय, आग लग जाय । इस प्रकार अनेक प्रकार से प्राप्त वस्तुएँ चली जाती हैं । कदाचित् भाग्य योग से रह जाय और भोगने का भाग्य न हो तो ऐसी बीमारी आ जाती है, जिस कारण खाना-पीना, ओढ़ना-पहनना बंद हो जाता है ।

वस्तुएँ देख-देखकर मन में जलन हो– **'अहो ! मैं कितना कमभागी ! बड़ी मेहनत और कई कूट-कपट से प्राप्त वस्तुएँ भी मैं भोग नहीं सकता ?'**

कदाचित् भाग्य अनुकूल हो और वस्तुएँ भुगतने को मिले तो भी अंत में तो उन सबको यही छोड़कर हमें अकेला ही जाना पड़ता है ।

मोह छोड़ो और त्यागी बनो :–

दुन्यवी वस्तुओं में सुख मानने में बुद्धिमत्ता नहीं है । इन नाशवंत और पराधीन वस्तुओं की **'प्राप्ति, सुरक्षा'** और भोग में मशगुल बनकर इस जिंदगी को पापों से मलिन करना, सिर्फ मूर्खता ही है । ऐसी मूर्खता कर सुख की आशा रखना वह तो महामूर्खता है । ज्ञानी महापुरुषों ने उस मूर्खता को छोड़ने का उपदेश दिया है । उनका तो उपदेश है– **'दुनिया के किसी भी पदार्थ में सुख नहीं है, परंतु सुख तो सिर्फ आत्मा में ही रहा हुआ है'** इस सत्य को समझाकर आत्मा के सुख को प्रकट करने के लिए पाप का त्याग कर सच्चे धर्म के सेवन में तत्पर बनो ।

पुण्योदय से प्राप्त दुन्यवी वस्तुओं का भी मोह छोड़ो, क्योंकि उन वस्तुओं में सुख मानकर भोग में पड़ोगे तो पाप का बंध होगा, जिसके फलस्वरूप पुनः दुःख प्राप्त होगा ।

पुण्योदय से प्राप्त दुन्यवी वस्तुओं का भी त्याग करना और दुःख में भी खेद न कर, धर्म का आचरण करना, यही सच्चे सुख का श्रेष्ठ मार्ग हैं ।

सिकंदर सम्राट् के लिए कहा जाता है कि उसने घोर पाप करके दुनिया की सत्ता हांसिल की थी और दुनिया की श्रेष्ठ समृद्धि और भोग सामग्री इकट्ठी की थी, परंतु जब उसकी मृत्यु का समय नजदीक आया तब उसे भान हुआ, **''मेरा घमंड झूठा है । भले ही मैं दुनिया का बादशाह बना, हजारों हकीम मेरे अधीन हैं, मेरी आज्ञानुसार चलनेवाले हजारों सैनिक हैं, भले मेरे पास अखूट खजाना है, परंतु इनमें से एक भी वस्तु मुझे मौत से बचानेवाली नहीं है और न ही एक भी वस्तु मेरे साथ चलनेवाली है । मेरे कर्म ही मेरे साथ चलेंगे । मैं पुण्य लेकर आया था और पाप लेकर जा रहा हूँ''–** मरते मरते भी उसे इतना भान हुआ ।

इस कारण उसने आज्ञा की– **'मेरी ननामी को सभी हकीम उठाएँ, नंगी तलवार लेकर अनेक सैनिक मेरी अंतिम यात्रा में साथ रहें । मेरी हथेली पर कालिमा पोतकर उन्हें खुले रखना ताकि लोगों को ख्याल आ सके कि अनेक होशियार हकीम और बलवान सैन्य भी सिकंदर सम्राट् को मौत से बचा नहीं सके और अखूट खजाने में से थोड़ी भी वस्तु साथ में नहीं ले जा सका, परंतु उन सबको पाने के लिए जो पाप किया गया, वह सब साथ चलेगा ।'**

दुनिया को मेरा यह संदेश कहना– **'ताकि मेरे जैसे पापी सिकंदर का दृष्टांत लेकर कोई सत्ता और समृद्धि पाने के लिए पाप न करे ।'**

ज्ञान-चक्षु खोलो :–

सिकंदर सम्राट् के लिए कही गई ये सब बातें सच्ची हैं या झूठी, उससे कोई निस्बत नहीं है, परंतु उससे यह बात तो सिद्ध होती ही है कि–**'मनुष्य जब मरता है तब दुनिया की कोई भी वस्तु उसके साथ में नहीं आती है, परंतु साथ में तो सिर्फ पुण्य और पाप ही आता है ।'**

अनंतकाल से संसारी जीव यह अनुभव करते आए हैं फिर भी मिथ्यात्व आदि के कारण संसारी जीवों के ज्ञान-चक्षु उघड़ते नहीं हैं ।

उपकारी महापुरुष फरमाते हैं कि ज्ञान–चक्षु खोलो, वस्तु-स्थिति को समझो । 'दुनिया के नाशवंत पराधीन पदार्थों के संयोग से सुख मिलता है' इस भ्रम को दूर कर आत्मा में रहे शाश्वत सुख को प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील बनो ।

महान् पुण्योदय से प्राप्त मानवजन्म को सफल व सार्थक बनाने के लिए यही एक मार्ग है । पूर्व के अनंत भवों की तरह यह भव भी निरर्थक चला गया तो वापस ये सामग्री कितने काल और कितने भव के बाद मिलेगी, यह तो ज्ञानी ही जान सकते हैं । परंतु धर्म न कर पाप करने में ही जिंदगी पूरी करने से संसार में एक भव में से दूसरे भव में भटकना पडेगा, यह निश्चित बात है ।

आत्म-कल्याण का उपाय :–

दुन्यवी पदार्थों में सुख देने की ताकत नहीं है, बल्कि सच्चा सुख आत्मा में रहा हुआ है– यह बात निश्चित हो जाने के बाद आत्मा में रहे सुख को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिये ।

आत्मा पर से संपूर्ण आवरण हट जाय और आत्मा पूर्ण निर्मल बन जाय तो आत्मा में रहा पूर्ण सुख प्रकट हो सकता है । इसके लिए पाप का त्याग और धर्म का आदर करना चाहिये । पाप-त्याग व धर्म-आदर के लिए पाप और धर्म के यथार्थ स्वरूप को जानना चाहिये । पाप-धर्म के यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए अनंतज्ञानी महापुरुषों की शरण स्वीकार करनी चाहिये ।

वर्तमान समय में इस भरतक्षेत्र में अनंतज्ञानी पुण्य पुरुष विद्यमान नहीं हैं । परंतु उन तारकों के द्वारा निर्दिष्ट पुण्य-पाप के स्वरूप को बतानेवाले शास्त्र विद्यमान हैं । उन शास्त्रों की आज्ञानुसार जीवन जीने के लिए प्रयत्न करना चाहिये और उन शास्त्रों के मर्म को जाननेवाले त्यागी पुरुषों की सेवा करनी चाहिये ।

अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा को देव के रूप में, उन तारकों की आज्ञानुसार जीवन जीनेवाले संसार त्यागी को गुरू के रूप में तथा उन तारकों के द्वारा निर्दिष्ट धर्म को, धर्म मानकर, उनका स्वीकार कर अन्य नामधारी देव, गुरू और धर्म का त्याग करना चाहिये ।

ऐसे देव-गुरू-धर्म का स्वीकार कर, संसार त्यागी गुरूओं की सेवा में रहकर धर्म साधने के लिए संसारत्यागी बनकर हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह के पापों का मन, वचन और कर्म से सर्वथा त्याग करना

चाहिये । ऐसे पाप दूसरों के पास भी नहीं कराने चाहिये और पाप करनेवालों की अनुमोदना भी नहीं करनी चाहिये ।

इस प्रकार संसार का त्याग कर आत्मा के मूल और निर्मल स्वरूप को प्रकट कराने में सहायक ऐसे अनुष्ठानों में गुर्वाज्ञानुसार जुड़ जाना चाहिये ।

सभा में से–*सभी साधु बन जाएंगे तो फिर क्या होगा ?*

पूज्यपादश्री :– परमात्मा की उपस्थितिमें उन तारकों का सतत उपदेश प्रवाह होने पर भी किसी काल में ऐसा हुआ नहीं है और भविष्य में ऐसा कभी होनेवाला नहीं है– क्योंकि दुनिया के अनंतजीवों में से जो अल्प संसारी, भाग्यशाली आत्मा होती है, उसी को ही अनंतज्ञानी परमात्मा का सच्चा और युक्ति-सिद्ध उपदेश पसंद आता है ।

हीनभागी आत्माओं को तो ऐसी बातें सुनने को भी नहीं मिलती है । कदाचित् सुनने को मिल जाय तो भी भारीकर्मिता के कारण वे बातें पसंद नहीं आती हैं । प्रभु के ये वचन पसंद पड़ने के बाद भी जो भाग्यशाली अल्पसंसारी आत्माएँ होती हैं, वे लघुकर्मी आत्माएँ भगवान की आज्ञानुसार साधु बनकर पाप का त्याग व धर्म का आचरण कर सकती हैं । इस कारण **'सभी साधु बन जाएंगे तो फिर क्या होगा ?'** यह चिंता करने जैसी नहीं है ।

सभी श्रीमंत हो जाएंगे तो नौकरी कौन करेगा ?' यह विचार किए बिना सभी लोग श्रीमंत बनने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं । वहाँ कोई ऐसा प्रश्न खड़ा नहीं करता है तो फिर साधुपने की बात में ही ऐसा प्रश्न क्यों उठाया जाता है ? इसका कारण यही है कि जो प्रेम श्रीमंतता पर है वह प्रेम धर्म पर नहीं है ।

सर्वश्रेष्ठ–साधुधर्म :–

जिसे धर्म पर प्रेम नहीं है, वह दुःखी हो, उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । दुःख से बचना हो और सुख पाना हो तो धर्म को छोड़ दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।

इस जगत् में सर्वश्रेष्ठ धर्म वीतराग परमात्मा द्वारा प्ररूपित साधु–धर्म ही हैं । उसमें पाप का सर्वथा त्याग होता है और आत्मा का सहज निर्मल स्वरूप प्रकट हो, ऐसा आचरण होता है ।

संसार का त्याग करने में आप असमर्थ हो तो कह सकते हैं कि– **'यह धर्म तो सुंदर है परंतु इसका पालन हमारे लिए असंभव है, अतः दूसरा उपाय बतलाओ ।'**

जिसके दिल में ऐसी भावना जगी हो, उसके लिए दूसरा उपाय है– **'दुन्यवी पदार्थों को आत्मा से भिन्न मानकर उसकी ममता का त्याग करना चाहिये'** यह शरीर भी अपने से भिन्न है, अतः शरीर की ममता का भी त्याग करना चाहिये, क्योंकि **दुन्यवी पदार्थ और शरीर की ममता तथा उनके सुयोग में सुख की कल्पना ही पाप का मूल है** अतः संसार न छूटे तो भी संसार में रहते हुए उसकी ममता घटाकर जितना संभव हो उतने हिंसादि पापों का त्याग करना चाहिये और शक्ति अनुसार देव-गुरु-धर्म की सेवा करनी चाहिये ।

किसी भी निरपराध जीवों को पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिये । बड़े झूठ नहीं बोलने चाहिये। **चोर के नाम से कर्म कलंकित हो ऐसी चोरी नहीं करनी चाहिये ।** स्व स्त्री में संतोषी बनना चाहिये और परिग्रह का परिमाण करना चाहिये ।

इतना तो हो सकता है न !

इन्द्रियों पर संयम आए तभी यह हो सकता है । इस प्रकार प्रयत्न करते हुए शक्ति प्राप्त हो जाय और भावना बढ़ जाय तो साधुजीवन के लिए प्रयत्न करना चाहिये ।

इस प्रकार वर्तन करनेवाले का क्रमशः आत्मस्वरूप प्रकट होगा और उसके योग से आत्मा अनंत सुख की भोक्ता बनेगी ।

सभी आत्माएँ इस प्रकार का आचरण कर दुःख से मुक्त बनकर शाश्वत सुख के भोक्ता बनो, यही एक शुभाभिलाषा ।

4

धर्म का ध्येय

येवत

पोष कृष्णा 11, वि.सं. 1994,
दि. 27-01-1938, गुरुवार

अनंत अनंतज्ञानी जिनेश्वर भगवंत फरमाते हैं कि **'समस्त सुखों का मूल धर्म है ।'** परंतु दुनिया के लोग सुबह उठते ही सोचते हैं–**'आज कैसे कमाई करूँ और क्या-क्या भोग करूँ !'**

'आज मुझे कौन से पाप नहीं करने हैं और कौनसा धर्माचरण करना है ?' यह बात सोचनेवाले तो विरले ही हैं । क्योंकि सभी को बाह्य सुख की ही इच्छा है, इस कारण आत्मा की चिंता करनेवाले विरले ही हैं ।

आत्मकल्याण की चिंता करनेवाले दुनिया में बहुत थोड़े हैं, क्योंकि लोगों ने देह के सुख में ही सुख मान लिया है । अर्थ-काम की चिंता के कारण धर्म की प्रवृत्ति तो नहींवत् होती है । आत्म-कल्याण की बातें करनेवालों में भी अधिकांश भाग आत्म-कल्याण के यथार्थ स्वरूप को समझता नहीं है ।

'धर्म से कल्याण और पाप से अकल्याण' इस प्रकार बोलनेवाले भी ऐसे बहुत से लोग हैं, जो पाप करने में कमी नहीं रखते हैं और वास्तविक धर्म का आचरण नहीं करते हैं ।

कई लोग धर्म करते हैं लेकिन दुन्यवी लालसाओं के अधीन बनकर !

अर्थ और काम की प्राप्ति के ध्येय से धर्म का आचरण करनेवाले, एक अपेक्षा से पाप को ही बढ़ा रहे हैं, क्योंकि धर्म का सच्चा ध्येय अर्थ-काम को बढ़ाने का नहीं है, बल्कि अर्थ-काम की आसक्ति में से मुक्त होने का है ।

'अर्थ-काम की वासना पापवासना है और अर्थ-काम के लिए प्रयत्न करना पाप प्रयत्न है ।' यह बात समझ में आ जाय तो अर्थ-काम के लिए किए धर्म से पाप का बंध कैसे होता है, यह समझ में आ सकता है ।

धर्म करने से अच्छा फल मिले परंतु इस प्रकार किए धर्म से उपार्जित पुण्य आत्मा को बरबाद कर दे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। अतः धर्म के सच्चे ध्येय को समझकर ही धर्म करना चाहिये, जिससे पाप की संभावना न रहे और आत्मसुख की अवश्य प्राप्ति हो।

धर्म के योग से दुन्यवी सुख प्राप्त नहीं होते हैं, ऐसा नहीं है। धर्म से दुन्यवी सुख मिलते ही हैं, परंतु वह धर्म, धर्म के नियम के अनुसार करे तो संसार में उत्तम कोटि के सुख भी मिलते हैं और परिणामतः मोक्ष सुख की भी प्राप्ति होती है।

अर्थ-काम की वासना छोड़ो :–

'पाप से सुख नहीं मिलता है'– यह निश्चित बात है। यदि पाप से सुख मिलता तो ज्ञानी महापुरूष पाप छोड़ने और धर्म के सेवन का उपदेश देते ही नहीं।

इस भव में पाप करने पर भी कही दुन्यवी भोग-सामग्री की प्राप्ति देखी जाती है, यह पूर्व भव के पुण्योदय का फल है। पूर्व के पुण्य का उदय न होता तो कितना ही पाप करने पर भी भोग-सामग्री नहीं मिलती। पाप के कारण भविष्य में दुःख की ही अभिवृद्धि होती है।

पाप करने पर भी पूर्व के पुण्योदय से भोगसामग्री मिल जाय तो भी उस पाप के फलस्वरूप भविष्य में तो दुःख ही बढ़ने वाला है। अतः सुख-शांति के लिए अर्थ-काम की वासना को छोड़कर धर्म करना, यही श्रेष्ठ उपाय है।

परमात्मा की शरणागति का स्वीकार कर जो आत्माएँ धर्म की आराधना करने में लीन बनती हैं, वे आत्माएँ इस भव में समभाव के कारण विकट परिस्थिति में भी अनुपम शांति प्राप्त करती हैं। इस भव में पाप का त्याग और धर्म के आदर के फलस्वरूप परभव में भी उस आत्मा को उत्तम सामग्री प्राप्त होती है।

पुण्यानुबंध पुण्य के भोग से प्राप्त सामग्री आत्मा को मोहित नहीं करती हैं बल्कि उसके वैराग्य को बढ़ाती है और क्रमशः वह आत्मा मोक्ष-सुख के निकट पहुँचती है। आत्म-कल्याण के इच्छुक व्यक्ति के लिए

परमात्मा ने यही एक मार्ग बतलाया है, और निकट मोक्ष-गामी आत्माओं को ही यह मार्ग पसंद पड़ता है ।

सच्चे सेवक बनो :–

इस दुनिया में परमात्मा को मानने की बात करनेवाले तो बहुत हैं, परंतु परमात्मा को माननेवाले बहुत कम हैं । एक ओर परमात्मा का नाम लेना और परमात्मा की पूजा करना तथा दूसरी ओर परमात्मा द्वारा निषिद्ध पाप के त्याग का विचार भी नहीं करना, परमात्मा द्वारा धर्म के आचरण की आज्ञा होने पर भी जीवन में धर्म का आचरण नहीं करना इस तरह से परमात्मा की आज्ञा की अवज्ञा करना क्या ऐसे व्यक्ति के लिए हम कह सकते हैं कि वह परमात्मा को मानता है ?

परमात्मा की पूजा करने पर भी जो परमात्मा की आज्ञा की अवगणना करता है, वह वास्तव में परमात्मा का सेवक नहीं है ।

जहाँ परमात्मा को माननेवाले कम हो, वहाँ पर आत्मा की आज्ञानुसार विचरण करनेवाले संसार त्यागी और संसार त्याग का ही उपदेश देनेवाले सुसाधु कम हो, यह स्वाभाविक है ।

आज आप लोग स्वागत (सामैया) के साथ हमें यहाँ लेकर आए...अब मान लो हमारे उपदेश का किसी के ऊपर असर हो जाय और किसी के दिल में संसार का त्याग कर प्रभु आज्ञानुसार पापरहित धर्ममय जीवन जीने का मन हो जाय तो यहां झगडा होवे या महोत्सव का आयोजन कर कल्याणकारी प्रवृत्ति की अनुमोदना करने का मन हो ?

साधु का स्वागत करनेवाले सच मायने में साधुता के पूजक हो, साधुता के चाहक हो, साधुजीवन में ही श्रेष्ठ कल्याणमार्ग की कल्पना हो, तब तो झगडा होने का प्रश्न ही नहीं रहेगा । आत्म-कल्याण साधते हुए को हम रोक नहीं सकते । शायद कोई झगडा करे तो उसे भी कह दे कि–ऐसी बातमें झगडा नहीं करना परंतु आज यह समझ बहुत कम लोगों में है ।

आज जो प्रभु की पूजा, गुरू भगवंतो के स्वागत और थोडी बहुत धर्म क्रियाएँ होती हैं, वह सब अधिकाशंतः कुलाचार के कारण होती है । सिर्फ आत्म-कल्याण के ध्येय से प्रभुपूजा, गुरू-सेवा तथा धर्म आराधना करनेवाला वर्ग बहुत थोडा है ।

आपका नंबर किसमें है ? आप स्वयं तय करें । मैं तो चाहता हूँ कि आप लोग देव-गुरू-धर्म के सच्चे सेवक बनें । जिसके फलस्वरूप देव-गुरु की सेवा तुम्हें फले और इस भव में नहीं तो अगले जन्म में सच्चे संयम को प्राप्त कर कर्मबंधन से मुक्त बनो ।

यह तभी संभव है जब आत्म-हित का भान होगा । **'दुन्यवी वस्तुएँ चाहे जितनी प्राप्त हो जाय परंतु उससे आत्मा का सच्चा सुख मिलनेवाला नहीं है'** । इस बात का निर्णय हो जाना चाहिये ।

आत्मा का सुख, आत्मा को छोड़ अन्य किसी वस्तु में नहीं है । आत्मा शाश्वत है, आत्मा का सुख भी शाश्वत है । आत्मा की मलिनता दूर होने पर ही वह सुख मिल सकता है । आत्मा की मलिनता दूर करने के लिए पाप से पीछे हटना चाहिये और धर्म में दृढ़ बनना चाहिये ।

संसार के संपूर्ण त्याग का संपूर्ण सामर्थ्य न हो तो भी **'दुन्यवी वस्तुओं में सुख है'** इस भ्रम को छोड़कर मोक्ष-सुख के अर्थी बनकर यथाशक्य धर्म करो ।

'दुनिया की सभी वस्तुएँ आत्मा से भिन्न हैं पर वस्तुओं के साथ आत्मा का संबंध ही सच्चे सुख की प्राप्ति में बाधक है' यह बात हृदय में जच जाय तो भी व्यक्ति संसार में रहकर उदासीनभाव पा सकता है । यह भाव आ जाय तो दु:ख के संयोगों में भी आत्मा समाधिभाव में रह सकती है ।

श्री कुमारपाल महाराजा :–

परमार्हत् श्री कुमारपाल महाराज के शत्रुओं ने उनके ऊपर विष प्रयोग किया था । कुमारपाल महाराजा को ज्योंहि पता चला, उन्होंने विषापहार मणि मंगाया, परंतु उन शत्रुओंने वह मणि तो पहले से ही छिपा दिया था ।

कुमारपाल महाराजा समझ गए । वे धर्म-ध्यान में रत बन गए । ऐसी स्थिति में भी उनका समाधिभाव बना रहा, क्योंकि वे संसार में भी उदासीनभाव से रहे हुए थे । उन्हें पुण्य पाप पर विश्वास था । भयंकर दु:खों में भी धर्म से सच्ची शांति मिल सकती है और अनेक अनुकूलताओं के बीच भी पापोदय व्यक्ति को दु:खी कर सकता है । अत: मेरा यही संदेश है कि देव-गुरू-धर्म के सच्चे उपासक बनो, जिससे आत्मा का अहित टल जाय और कल्याण हो जाय ।

5

दु:ख का मूल–जड़ का योग

केडगाँव **पोष कृष्णा 12, वि.सं. 1994,**
दि. 28-01-1938, शुक्रवार

इस दुनिया में मुख्यतया जड़ और चेतन ये दो तत्त्व विद्यमान हैं। दुनिया के सभी पदार्थ व प्राणियों का समावेश इन दो तत्त्वों में हो जाता है। कई वस्तुएँ सिर्फ जड़ हैं, कई वस्तुएँ सिर्फ चेतन हैं और कुछ वस्तुएँ जड़-चेतन के योगवाली हैं।

बंगला, घर, पैसे आदि सिर्फ जड़ हैं। जड़ के संयोग से मुक्त बनकर निज स्वरूप को प्राप्त सिद्ध भगवान सिर्फ चेतन हैं तथा मनुष्य, देव, नरक व तिर्यंच इन चार गति और चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करती हुई आत्मा जड़-चेतन के संयोगवाली हैं।

धर्म का ध्येय :–

जड-चेतन के संयोगवाली आत्मा अपने जड़-चेतन के संयोग को समझकर, जड़ के संयोग का नाश कर अपनी आत्मा के निर्मल स्वरूप को प्राप्त करे, इसके लिए ही धर्म का आयोजन है। धर्म के प्ररुपको ने धर्म की प्ररुपणा दुन्यवी स्वार्थ की सिद्धि के लिए नहीं की है। दुन्यवी प्राणियों के हित के लिए ही धर्म-प्ररूपकों ने धर्म की प्ररूपणा की है। धर्म-प्ररूपक तो राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त बने हुए थे, अनंतज्ञान के स्वामी थे। इस कारण उन तारकों को अन्य किसी भी प्रकार की अभिलाषा नहीं थी और हो भी नहीं सकती।

उन तारकों ने धर्मशासन की स्थापना इच्छापूर्वक नहीं की है, बल्कि पूर्व भव में जो प्राणी मात्र के कल्याण की भावना की थी, उस भावना से उपार्जित महापुण्य के योग से वे तारक धर्म-शासन की स्थापना करते हैं,

फिर भी उपचार से हम कह सकते हैं कि दुनिया के जीवों के एकांत हित के लिए ही उन तारकों ने धर्मशासन की स्थापना की थी ।

जैन शासन और जैन :–

यदि कोई पूछे कि **'जैन शासन क्या है ?'** तो कह सकते हैं कि जैनशासन अर्थात् चेतन और जड़ के यथार्थ स्वरूप को समझाकर आत्मा के साथ हुए अनादिकालीन जड़ के संयोग से आत्मा को मुक्त बनाने का मार्ग बतानेवाला शासन !

जैन शासन का यह लक्षण निश्चित कर लेने के बाद **'जैन किसे कहा जाय ?'** यह निश्चित करना आसान हो जाता है ।

जैन अर्थात् जड़ के अनादिकालीन योग से अपनी आत्मा को मुक्त बनाने के लिए अभिलाषी आत्मा !

जैन अर्थात् अपनी आत्मा को जड़ के अनादिकालीन भोग से मुक्त बनाने के लिए अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर पूर्ण श्रद्धालु आत्मा और यथाशक्ति उस मार्ग पर चलने के लिए प्रयत्नशील आत्मा । इसमें साधु और श्रावक दोनों आ जाते हैं ।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका ये चारों अपनी आत्मा को अनादिकालीन जड़ के संयोग से मुक्त बनाने की अभिलाषावाले होते हैं । अनंतज्ञानी जिनेश्वर परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट जड़-चेतन के स्वरूप तथा जड़ से चेतन को अलग करने के मार्ग पर श्रद्धालु भी होते हैं । उस अभिलाषा और श्रद्धा के बल से वे जिनेश्वर देव की आज्ञा को अपने जीवन में आचरण में लाने के लिए प्रयत्नशील भी होते हैं ।

चतुर्विध श्री संघ अर्थात् मोक्षमार्ग पर श्रद्धावान् तथा उस मार्ग पर यथाशक्य आचरण करनेवाला श्री संघ !

जैन का अर्थ ही है–**'अपनी आत्मा को जड़ से अनादिकालीन संयोग से मुक्त करने के लिए श्री जिनेश्वर की आज्ञा पर श्रद्धा रखकर आज्ञानुसार चलने के लिए इच्छुक आत्मा ।'**

जैन कुल में जन्मा हुआ ही **'जैन'** होता है, ऐसा नियम नहीं है । जो कोई आत्मा ऐसी अभिलाषा और श्रद्धापूर्वक जिनाज्ञानुसार अपनी आत्मा

को जड़ के अनादिकालीन संसर्ग से मुक्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है, वे सब जैन है ।

सच्चे जैनत्व बिना कल्याण नहीं :–

उपकारी महापुरूषों का फरमान है कि दुनिया के सभी जीव इस प्रकार के सच्चे जैन बनें । दुनिया के जीवों को जो सुख चाहिये, वह सच्चे जैन बने बिना मिलनेवाला नहीं है । दुःख का अंत भी इसके बिना शक्य नहीं है ।

दुनिया के जीवों की दुःखमुक्ति और सुखप्राप्ति के लिए ही उन महापुरूषों ने मोक्ष-मार्ग बतलाया है । वे महापुरुष जानते हैं कि **जब तक आत्मा जड़ के अनादिकालीन भोग से मुक्त नहीं बनेगी, तब तक आत्मा सच्चे सुख को प्राप्त नहीं कर सकेगी ।**

'धर्म का मूल दया है'– इस बात को सभी स्वीकार करते हैं । परंतु दया किसकी ? मात्र दीन-दुःखी जीवों की ही दया या अपनी आत्मा की भी दया ?

आज कल लोग बाह्य दया की उपासना में आत्मा की दया भूल गए हैं, इस कारण दया-दया के रूप में न रहकर हिंसा रूप बन जाती है । सच्चा दयालु वह है– **जिसके दिल में अपनी आत्मा की दया है । जिसके दिल में आत्मदया नहीं है, उसके दिल में अन्य जीवों के प्रति श्रेष्ठ कोटि की दया पैदा ही नहीं हो सकती है ।**

दुःख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति का एक मात्र उपाय, अनादिकालीन आत्मा से जड़ के संयोग को दूर करना है ।

दुनिया के अधिकांश लोग जड़ के योग (संयोग) में सुख मान रहे हैं । इस विसंवादिता के कारण विश्व की अनंत आत्माएँ अनंतकाल से सुख की प्राप्ति के लिए अनेकविध प्रयत्न करने पर भी सुख नहीं पा रही हैं और दुःख से मुक्त नहीं हो रही हैं । दुन्यवी लोग जड़ के आकर्षण में लुब्ध हो गए हैं, जबकि महापुरुष हमें आत्मा का आकर्षण पैदा करने का उपदेश दे रहे हैं । **जड़ का आकर्षण दूर किए बिना तथा आत्मा का आकर्षण पैदा किए बिना स्व-पर कल्याण की साधना शक्य नहीं है ।**

दुःख का मूल - जड़ का संयोग :–

'आत्मा के साथ जड़ की एकता ही दुःख का मूल है' इस परम सत्य को समझे बिना वास्तविक धर्म की आराधना शक्य नहीं है । जड़ पदार्थ यहीं रहनेवाले हैं, वे साथ चलनेवाले नहीं हैं । वे पदार्थ नाशवंत हैं, अपनी इच्छानुसार रहनेवाले नहीं हैं, अपनी इच्छानुसार उनका भोग भी शक्य नहीं है, पर भव में आत्मा अकेली ही जाती है । यह सब जानने पर भी अधिकांश लोगों को आत्म-हित की चिंता नहीं होती है और जड़ का मोह दूर नहीं होता है, यह भयंकर अज्ञानता ही है ।

महापुरुष फरमाते हैं कि **'यदि आप अपना भला चाहते हो तो अपनी अज्ञानता को दूर करो और जड़ के आकर्षण से मुक्त बनकर धर्म सेवन में तत्पर बनों ।'**

सच्ची जीव दया :–

आत्म-दया रहित जीवदया प्रायः स्वार्थप्रधान होती है । सिर्फ बाह्य दया के उपासक, दया के नाम पर अन्य जीवों को भयंकर नुकसान पहुँचा देते हैं । आत्म-दया के ज्ञान के अभाव में दुनिया के लोग अपनी आत्मा को जड़ की सेवा में जोड़कर अपने आत्म-हित का हनन करते हैं । वे अपने संबंधी, आश्रित व मित्रों को भी जड़ रसिक बनाकर उनके भी आत्म-हित को नुकसान पहुँचाते हैं ।

सच्चा दयालु तो जड़ के संसर्ग से अपनी आत्मा को मुक्त बनाने के लिए महापुरुषों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग में अपनी आत्मा को जोड़ता है और दूसरों को भी जड़ के संयोग से मुक्त बनाने के लिए महापुरुषों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग में जोड़ता है ।

शोचनीय दशा :–

आप अपने संतान, संबंधी, मित्र व आश्रितों का भला चाहते हो ?

सभा में से :– हाँ जी इस इच्छा से आप थोड़ा बहुत प्रयत्न भी करते हैं, परंतु जरा सोचें, आप जो प्रयत्न करते हैं, वह उचित और पर्याप्त है ? इस भव में वे सब सुखी हो ऐसी आपको चिंता है, परंतु परभव में उनका क्या होगा ? यह चिंता है ? उनकी आत्मा के कल्याण का विचार या प्रयत्न किया है ?

वास्तविकता तो यह हैं कि आपको जब अपने ही कल्याण का विचार नहीं आता हो वहाँ दूसरों के कल्याण का तो विचार भी कहाँ से आए ? यह स्थिति आपके जैनत्व के लिए लांछनरूप है ।

जैन कुल में जन्म लेने से सुदेव-सुगुरु और सुधर्म की सरलता से आराधना हो सकती हैं, ऐसी सामग्री आपको मिली है । यह सब मिलने पर भी यदि आप अपने जैनत्व का विचार न करें और सिर्फ जड़ के आकर्षण में ही फंसे रहे तो यह स्थिति आपके लिए अत्यंत ही शोचनीय है ।

दुनिया में आज दया के विकृत स्वरूप का प्रचार हो रहा है । **'मनुष्य को छोड़ अन्य प्राणियों में आत्मा ही न हो, इस तरह मनुष्य की बाह्य दया को प्रधानता दी जा रही है, इसके फलस्वरूप अन्य प्राणियों के प्रति हिंसक भाव बढ़ता जा रहा है ।'**

मनुष्य के दैहिक सुख के लिए कितने ही मुक प्राणियों की कतल करने के लिए आज अनेक लोग तैयार हो गए हैं, क्योंकि आत्म-दया की बात भूल गए हैं और जड़ पदार्थों के योग से प्राप्त सुख की लालसा बढ़ गई है । इस मनोवृत्ति के कारण आज कई लोग साधु को कंगाल मान बैठे हैं, क्योंकि साधु तो प्राणी मात्र की आत्म-दया की बात प्रधान रूप से करते हैं ।

आत्मदया के स्वीकार में द्रव्यदया आ ही जाती हैं । आज सुसाधुओं को भी नहीं माननेवाला वर्ग बढ़ रहा है । जड़ के आकर्षण में लोग इतने अंध हो गए हैं कि साधुओं की सेवा द्वारा भी आत्मसुख की इच्छा न रखकर दुन्यवी सुख की ही इच्छा रखते हैं । वास्तव में दोनों प्रकार का वर्ग सुसाधु को माननेवाला नहीं है । मैं यही चाहता हूँ कि आप इन दोनों वर्गों में से बाहर निकलकर आत्मसुख के चाहक बनो ।

साधुजीवन के इच्छुक बनो :–

धीरे-धीरे परिस्थिति इतनी बिगड़ रही है कि लोग सच्चे जैनत्व को भी भूलते जा रहे हैं । मात्र जैनकुल में जन्मे इसलिए जैन, इस बात को भूलकर सच्चे जैन बनो । जड़ के योग से अपनी आत्मा को मुक्त बनाने के लिए तत्पर बनो । इसके लिए अनंतज्ञानी जिनेश्वर देव की आज्ञानुसार जीवन जीने के लिए प्रयत्नशील बनो । जड़ का योग ही दु:ख का कारण

होने से यथा शक्य जड वस्तुओं का त्याग करो और आत्मा के मूल स्वभाव का अभ्यास हो, ऐसा जीवन जीने के लिए प्रयत्नशील बनो ।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय है । ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र की सर्वोच्च साधना साधुजीवन में ही शक्य है । श्रावक तो ऐसे जीवन के लिए तरसता है ।

साधुजीवन का प्रेम-जगेगा तभी जिनेश्वर देव और उन तारकों की आज्ञानुसार जीवन जीनेवाले सद्गुरूओं के प्रति वास्तविक भक्ति-भाव प्रकट होगा । तभी आप लोग सुदेव, सुगुरू और सुधर्म के सच्चे उपासक बन सकोगे । इसके बिना सच्चे जैनत्व की प्राप्ति नहीं होगी और यह भव भी व्यर्थ चला जाएगा ।

संसार की भावना यह तो जैन समाज की रोजींदी वस्तु है । जैन, संयम की भावना से रहित हो, यह कैसे हो सकता हैं ? परंतु आज तो संयम की बात भी बडी कडवी लगती है, क्योंकि आप में जैनत्व रहा नहीं है । वृद्ध भी जिंदगी के अंत समय तक असंयम जीवन रख कर नई पीढी पर गलत छाप डाल रहे हैं ।

आज वातावरण इतना अधिक बिगड गया है कि कोई दुराचारी बन जाय तो किसी को परवाह नहीं हैं, परंतु कोई साधु बन जाय तो अज्ञात व्यक्ति भी संबंधी बनकर अनेक विघ्न खडे कर देता है ।

अनाचार से द्वेष के बजाय साधुता का द्वेष यह बडे दुर्भाग्य की निशानी है । दुन्यवी सुख में पागल बने हुए लोगों की यह हितकर बात पसंद नहीं पडती है ।

आत्म-कल्याण की उपेक्षा :–

आज सदाचार कितना पसंद है इसे समझाने के लिए एक सामान्य बात का विचार करें ।

'वर' की पसंदगी करनी हो तो आज के वृद्ध लोग सामनेवाले के पास **'धन'** कितना है ? यह देखते है और आधुनिक लोग वर की पसंदगी में शिक्षण देखते हैं परंतु सामनेवाला शीलवान सदाचारी हैं या नहीं ?

श्वसुरगृह जाने के बाद अपनी पुत्री को अच्छे आचार विचार मिलेंगे या नहीं ? यह देखनेवाले कितने हैं ?

आज तो अधिकांश लोग दुन्यवी सुख ही देखते हैं, आत्म-कल्याण की किसी को परवाह नहीं है ।

जैन समाज को यह शोभा नहीं देता हैं । जैन समाज में तो आत्म-सुख की ही प्रधानता होनी चाहिये ।

यदि सभी जैन सच्चे जैन बन जाय तो अन्य अनेक आत्माएँ जैनशासन की शरण पाकर अपना कल्याण कर सकती है ।

सच्चे जैनत्व को पाए हुए पुण्यशाली आज बहुत कम हैं । प्रत्येक गाँव में 10-10 श्रावक भी सच्चे जैन बन जायँ तो एक दशक में जैन समाज का कायाकल्प हो सकता है । यह तो भवितव्यता होगी तो होगा, परंतु यदि आप अपना कल्याण चाहते हो तो जड़ के आकर्षण से मुक्त बनने का प्रयत्न करे ।

जड़ के आकर्षण से मुक्त बनकर जिनेश्वर की आज्ञानुसार जीवन जीने के लिए प्रयत्नशील बनी आत्मा इस भव में भी समभाव के अनुपम सुख को पा सकती है और परभव में भी उन आत्माओं को उत्तम कोटि की सामग्री मिलती है और अंत में वे आत्माएँ दुःख के लेश से रहित, शाश्वत व संपूर्ण सुख पा सकती हैं ।

इस प्रकार सभी आत्माएँ अनादिकालीन जड़ के संयोग से अपनी आत्मा को मुक्त कर जिनेश्वर देव की आज्ञानुसार जीवन जीकर अंत में संपूर्ण सुखमय अवस्था प्राप्त करें, यही एक शुभाभिलाषा है ।

6

धर्म से सुरक्षा

सुपा

पोष वदी 13, वि.सं. 1994,
दि. 29-01-1938, शनिवार

जगत् के जीवों को कल्याण का मार्ग बताने हुए उपकारी महापुरुषों ने धर्म की शरण स्वीकार करने का निर्देश किया है। क्योंकि धर्म की साधना किए बिना किसी का कल्याण हुआ नहीं है। **'धर्म की साधना किए बिना किसी का भी कल्याण होगा नहीं'** यह बात महापुरुषों को ज्ञात थी।

'धर्म तारनेवाला है और अधर्म डूबानेवाला है'– यह बात तो सभी मानते हैं। **'धर्मो रक्षति रक्षितः'** यह बात तो आपको मान्य है लेकिन आज धर्म के प्रति जैसा आदरभाव चाहिये, वैसा नहीं है।

'हमने धर्म का रक्षण किया होगा तो धर्म हमारी रक्षा करेगा' यह बात जो कहते हैं वे यदि अपने आत्म-धर्म की रक्षा करते तो आज जो दशा हो रही है, वैसी दशा नहीं होती। आज धर्म से रक्षण मांगा जाता हैं लेकिन धर्म का अनादर करने में कमी नहीं रखते हैं। **'एक और धर्म का पालन नहीं करना, दूसरी ओर धर्म हमारा रक्षक नहीं बनता है' 'ऐसी बात करना'** यह क्या सुखी बनने का उपाय है ?

'धर्म ही अपना सच्चा रक्षक है' हृदय में यह विश्वास होता तो धर्म को छोड़ अधर्म की सेवा करने का मन नहीं होता। जो धर्म से रक्षण चाहता है, उसे धर्म के पालन में भी उद्यमशील बनना चाहिये।

धर्म अवश्य रक्षा करता है, परंतु कब ?

'धर्मो रक्षति रक्षितः' कहनेवाले ने एक शर्त रखी हैं उसका (धर्म का) पालन करे तब **'धर्मो रक्षति'** यह बात सही है किंतु **'रक्षितो धर्मो रक्षति'** यह बात भूलने की नहीं हैं।

आप अपने आत्म-धर्म की रक्षा करोगे तो वह धर्म आपके आत्मा की रक्षा करेगा ।

धर्म की रक्षा किए बिना, धर्म अपनी रक्षा करेगा, यह कैसे संभव है ?

आत्म रक्षा का मार्ग :–

'प्राचीन काल में परमात्मा ने महापुरूषों की रक्षा की' ऐसा आप मानते हो, इस कारण वैसा ही रक्षण परमात्मा के पास माँगते हो, परंतु उन महापुरूषों ने परमात्मा द्वारा बतलाए धर्म के लिए कितना कष्ट सहन किया था, यह आप क्यों भूल जाते हो ? वास्तव में परमात्मा न तो किसी का रक्षण करते हैं और ही किसी का भक्षण करते हैं । परमात्मा ने हमें आत्म-रक्षा का मार्ग बताया है और जो कोई उस मार्ग पर चलता है, उसका आत्म-रक्षण हुए बिना रहता नहीं है– यह निश्चित बात है ।

हरिश्चन्द्र की कीर्ति किसे पसंद नहीं है ? सभी लोगों को वैसी प्रसिद्धि चाहिये, परंतु अपने वचन पालन के खातिर हरिश्चन्द्र राजा ने कितने कष्ट सहन किए थे–वे कष्ट सहन करने के लिए आप तैयार हो ? हरिश्चन्द्र जैसी कीर्ति पाने के लिए कितने एकवचनी–सत्यवचनी बने ?

झूठ छोड़ना नहीं और हरिश्चन्द्र की कीर्ति की इच्छा करना, यह तो मूर्खता ही है न !

निःस्पृहतापूर्वक धर्म करो :–

उपकारी महापुरुष फरमाते हैं धर्म करो लेकिन दुन्यवी किसी भी वस्तु की इच्छा न रखो । कीर्ति, समृद्धि, भोगसामग्री व सत्ता इन सबकी लालसा छोड़कर निःस्पृहभाव से धर्म का सेवन करो ।

विश्वास रखो कि अनंतज्ञानी की आज्ञानुसार निःस्पृहभाव से किया गया धर्म आपको सभी अनुकूलताएँ प्रदान करेगा और अंत में जहां धर्म करने की आवश्यकता नहीं रहेगी, ऐसी स्थिति प्राप्त करा देगा क्योंकि धर्म के फलस्वरूप मोक्षफल की प्राप्ति हो जाती है । मोक्ष की प्राप्ति के साथ ही आत्मा हमेशा के लिए दुःख मुक्त हो जाती है, अतः धर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है ।

एक मात्र धर्म में ही दुःख-मुक्त कराने और सुख-प्राप्त कराने की शक्ति है । फिर भी आज व्यक्ति धर्म के प्रति खूब बेपरवाह है । आज व्यक्ति अपनी संतानों को धन-प्राप्ति व भोग का शिक्षण दिलाने में सावधान है, किंतु धर्म के शिक्षण के प्रति लक्ष्य नहीं देते हैं ।

'धर्मो रक्षति रक्षितः' यह बोलते हो, लेकिन इस बात को मानते हो ? यदि इस बात को मानते हो तो अपनी संतानों को धर्म का शिक्षण दिए बिना नहीं रहते ।

आपकी संतानें बुद्धिहीन और रोगी पैदा हो जाये तो आपको दुःख होता है, परंतु आपकी संतानें अनीतिवाली और अधर्मी पैदा हो, उसका दुःख कितने को होता हैं ?

आपका पुत्र अनीतिवाला, अधर्मी हो, दूसरे को ठगने में होशियार हो और किसी से ठगा नहीं जाता हो तो क्या आपको दुःख होता है ? ऐसी स्थिति में भी आपको आनंद के बजाय दुःख होता हो और **'अधर्मी बनकर इसने तो कुल को लजाया ऐसा लगे'** तो 'धर्मो रक्षति रक्षितः' इस बात को आप स्वीकार करते हो, ऐसा कह सकते हैं ।

संतानों के अधर्म को देखकर खेद पानेवाले इस दुनिया में विरल लोग हैं । इसी कारण संतानों के व्यावहारिक शिक्षण के लिए सभी प्रयत्न करते हैं, परंतु धर्म के शिक्षण के प्रति उपेक्षा करते हैं ।

प्राचीन काल में इससे विपरीत परिस्थिति थी । परंपरागत व्यवसाय का शिक्षण घर पर स्वाभाविक मिल जाता था और धर्म-शिक्षण के प्रति विशेष लक्ष्य दिया जाता था । इस कारण कुटुंब में स्वाभाविक संप रहता और अच्छे आचार-विचार रहते थे ।

श्री दशरथ का कुटुंब एक आदर्श कुटुंब था । प्राचीन काल में कैसा शिक्षण और संस्कार मिलते थे, इसका ख्याल दशरथ के कुटुंब से आता है ।

वचन पालन :–

श्री रामचंद्रजी एक आदर्श पुत्र थे । सदाचारी और प्रजाप्रिय थे। ज्येष्ठ पुत्र होने से राजगद्दी के अधिकारी थे । फिर भी श्री दशरथ राजा ने

अपना एक वचनपना नहीं गुमाया । क्या श्री दशरथ राजा को रामचंद्रजी पर प्रेम नहीं था ? उन्हें रामचंद्रजी पर प्रेम अवश्य था, लेकिन उससे भी धर्म पर अधिक प्रेम था । अन्य सभी प्रेमपात्र वस्तुओं को वे धर्म से हीन मानते थे । धर्म के लिए सर्वस्व त्याग करना पड़े तो भी वे तैयार थे । इसी कारण– प्रजा क्या कहेगी ? मंत्री व सामंत क्या सोचेंगे ? कुटुंब में क्या स्थिति खड़ी होगी ? यह सब विचार किए बिना दशरथ राजा ने वर्षों पूर्व कैकेयी को दिए वचन का पालन किया था ।

दशरथ राजा ने कैकेयी को दिए वचन के अनेक वर्ष बीत चुके थे और कैसी परिस्थिति में कैकेयी ने वरदान की माँग की, यह भी नहीं देखा । दशरथ राजा ने तो एक ही देखा मेरा धर्म रहता है या नहीं ? धर्म रहता हो तो वे अन्य सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार थे । दशरथ राजा में इतनी धर्मदृढ़ता नहीं होती तो राम के प्रति रहा प्रेम उन्हें वचनभंग कराए बिना नहीं रहता। परंतु दशरथ अपने वचन में दृढ़ रहे । इसका मुख्य कारण उन्हें प्राप्त धर्म-शिक्षण और धर्म-संस्कार था ।

रामचंद्रजी की महानता :–

रामचन्द्रजी की उत्तमता भी देखें । दशरथ राजा ने अपने वचन पालन के लिए कैकेयी की माँग स्वीकार कर भरत को राज्य दिया, उस समय उन्होंने राम को पूछा भी नहीं ।

रामचंद्रजी स्वयं राज्य के अधिकारी है, हर तरह से सुयोग्य है, प्रजाप्रिय है, सभी लोग उन्हें स्वामी बनाने के लिए तैयार हैं, इतना होने पर भी एक पिता के वचन-पालन के खातिर उन्होंने अपना सर्व अधिकार छोड़ दिया ।

राम के साथ विचार-विमर्श किए बिना ही दशरथ ने भरत को राज्य दे दिया

राम ने यह भी नहीं सोचा कि पिता ने भले ही भरत को राज्य दिया, परंतु मुझे पूछना तो था । राम का शिक्षण व संस्कार विशिष्ट कोटि का था ।

कैकेयी की माँग से भरत को राज्य देने के बाद दशरथ ने राम को बुलाया और भरत को राज्य देने की बात की ।

राम ने कहा–**'पिताजी ! भरत को राज्य देने के संदर्भ में आप**

मुझे पूछते तो इससे मेरा अविनीतपना सिद्ध होगा । लोग क्या समझेंगे–भरत को राज्य देने के पूर्व राम को पूछना पड़ा ? आप राज्य के स्वामी हो, आप चाहे तो किसी को भी राज्य दे सकते हो । राज्य का मालिक मैं रहूँ या भरत, दोनों एक समान हैं । '

भरत की महानता :–

इसी प्रकार भरत की महानता देखें । `भरत भी राज्य के लोभ में फंसा नहीं । माता की इस मांग के बदले में भरत ने अपनी माँ को फटकार दिया है । अनेक प्रयत्न व आग्रह करने पर भी भरत ने राज्य लेने से इन्कार ही किया है । राम ने भी भरत को राज्य लेने के लिए आग्रह किया । फिर भी भरत ने निषेध ही किया ।

राम ने देखा **'मैं जब तक अयोध्या में रहूँगा, तब तक भरत राज्य ग्रहण नहीं करेगा ।'** इस प्रकार सोचकर राम ने अयोध्या का त्याग कर दिया । भरत को पता चला तो वह भी राम के पीछे-पीछे गया । **'उसने राम को खूब आग्रह किया, परंतु राम ने भी राज्य का स्वीकार नहीं किया ।'**

आखिर राम ने पिता की आज्ञा और प्रजा के रक्षण के लिए भरत को राज्य लेने की आज्ञा की । ऐसी स्थिति में भी राम को राजा व स्वयं को सेवक मानते हुए ही भरत ने राज्य किया था ।

आज दशरथ की तरह एकवचनी पुरुष कितने मिलेंगे ? आज तो सामान्य स्वार्थ के लिए भी व्यक्ति अपने दिए वचन को भूल जाता है ।

अपने अधिकार छोड़कर राज्य को छोड़कर चले जानेवाले राम जैसे तथा चारों ओर से राज्य लेने के लिए अति आग्रह होने पर भी राज्य का अस्वीकार करनेवाले भरत जैसे भाई कितने मिलेंगे ?

आज तो राज्य पाने के लिए तथा अपने अधिकार की वस्तु पाने के लिए किसी के साथ झगड़ने में धर्म माना जाता है । उस काल में राज्य के त्याग के लिए लड़ाई थी ।

पौद्‌गलिक वस्तुओं के लिए पिता और सगे भाई के सामने कोर्ट में जाते हैं और अनधिकारी वस्तु पाने के लिए कितने प्रपंच किए जाते हैं।

देखो–आर्य प्रजा का कितना अधिक अधःपतन हो गया है ? इस अधःपतन का कारण है–धर्म का शिक्षण चला गया । धर्म के प्रति अनादर भाव बढ़ा । दुन्यवी स्वार्थवृत्ति को बढ़ानेवाला शिक्षण तथा वैसे ही संस्कार मिलने लगे । दुन्यवी स्वार्थ की लालसा बढ़ने से अच्छे आचार व विचारों का लगभग नाश हो गया है ।

हमें पौद्‌गलिक सामग्री का जो सुख मिला है, वह पूर्व के पुण्योदय से प्राप्त हुआ है । पूर्व का पुण्य नहीं होता तो कठोर श्रम करने पर भी कुछ नहीं मिलता । तीव्र पाप का उदय होने पर भीख मांगने पर भी पेट नहीं भरता है ।

उपकारी ज्ञानी भगवंत फरमाते हैं कि `इस स्थिति को समझकर पाप से पीछे हटे, और आत्मिक सुख पाने के लिए धर्म में उद्यमशील बने ।

धर्म की निंदा न करें :–

कुछ लोग थोडा-बहुत धर्म करते हैं और जब ऐच्छिक पदार्थ नहीं मिलते हैं तब धर्म को दोष देते हैं । पूर्व में जो पाप किया है, उसका फल भी तो भोगना पड़ेगा न ? परंतु यह विचार बहुत कम लोगों को आता है । कई लोग तो अज्ञानता से ही धर्म की निंदा करने लग जाते हैं ।

दूसरी यह बात है कि– वास्तव में धर्म-पालन पौद्‌गलिक पदार्थों की लालसा के पोषण के लिए नहीं बल्कि आत्म-गुणों को प्रकट करने के ध्येय से करना चाहिये ।

धर्म का ध्येय मोक्ष से विपरीत नहीं होना चाहिए । मोक्ष के ध्येय से ज्ञानी की आज्ञानुसार किया गया धर्म अंत में अवश्य मोक्ष में पहुँचाता है । परंतु मोक्ष प्राप्ति के पूर्व दुनिया की सर्वश्रेष्ठ सामग्री देने की ताकत धर्म में ही ।

'किसी को पाप करने पर भी धन मिल जाता है, वह धन पाप से नहीं किंतु पूर्व के पुण्य-योग से मिला है ।' यह बात आप सोचते नहीं हैं ।

धर्मपालन करने पर भी कदाचित् आपत्ति आ जाए तो धर्म के प्रति द्वेष न कर पूर्व में किए गए पाप का फल प्राप्त हुआ है, यह सोचना चाहिए ।

आज दृष्टि-विपर्यास बना हुआ हैं । सर्वथा दुःख-मुक्ति और एकांत

सुखमय शाश्वत जीवन को पाने के लिए इस दृष्टि-विपर्यास से मुक्त होना पड़ेगा ।

आत्मा आत्म-गुण और आत्म-गुणों को विकसानेवाली सामग्री के प्रति सम-भाव बढाना होगा । इन्हें छोड़ अन्य वस्तुओं को पर मानकर उसके संबंध से छूटने के लिए प्रयत्नशील बनना पडेगा ।

पूर्व के पुण्योदय से प्राप्त सामग्री का उपयोग भोग में न कर आत्म-गुणों को विकसित करने में उसका उपयोग करना चाहिए ।

पूर्व के पुण्योदय से प्राप्त सामग्री से नए पाप बांधना, इसमें बुद्धिमत्ता नहीं है, परंतु उनके सदुपयोग में बुद्धिमत्ता है ।

दुःख आने पर भी घबराए नहीं और **'यह मेरे पूर्व में किए पाप-कर्म का फल है'** यह सोचकर दुःख को समभाव से सहन करना चाहिये । जिससे पाप का फल भोगते हुए अन्य पापों से आत्मा बंधाती नहीं है ।

आज तो पुण्योदय से प्राप्त सुख और पापोदय से प्राप्त दुःख, दोनों स्थिति में आत्मा नए-नए पापों का ही बंध करती है । इस कारण भविष्य बिगड़ता जाता है ।

सच्चे आत्मवादी बनो :–

इस स्थिति को सुधारने के लिए अपनी दृष्टि को बदलना चाहिये । जड़ पदार्थ में रही आत्म-बुद्धि को दूर करना चाहिये और आत्मा के प्रति जो उपेक्षा भाव हैं, उसे भी दूर करना चाहिये ।

स्व अर्थात् अपनी आत्मा, पर अर्थात् जड़ से जकड़ी हुई है । अतः पर के योग से छूटने के लिए जो-जो उपयोगी सामग्री हो, उसे प्राप्त करना चाहिये और उसका सदुपयोग करना चाहिये ।

यह सब शक्य है, जब आप सच्चे आत्मवादी बने । पाश्चात्य लोग जड़वादी हैं । आज वह हवा इस देश में फैल रही है । **आत्मवादी हुए बिना कल्याण होनेवाला नहीं है ।**

जड़ पदार्थों का सुख स्थायी नहीं है । उस सुख के भोग से बंधे हुए पापों के फलस्वरूप आत्मा को भयंकर दुःख सहन करने पड़ते हैं । इसी कारण ज्ञानी महापुरुष जड़ सुख की लालसा का त्याग कर आत्मसुख पाने का उपदेश देते हैं ।

जब आत्मा में से मिथ्याबुद्धि दूर होती है, तभी ज्ञानियों का यह उपदेश रुचिकर लगता है ।

मिथ्याबुद्धि दूर होने पर राग-द्वेष से रहित देव में ही देव-बुद्धि पैदा होती है ।

उन देव (परमात्मा) की आज्ञानुसार रूप, वैभव तथा विषय-सुखों का त्याग कर निर्ग्रंथ बनकर संयम धर्म का पालन करनेवालों में ही गुरुबुद्धि पैदा होती है ।

संसार की वासना छुड़ाकर राग-द्वेष से अपने आपको मुक्त बनाए और आत्मा के गुणों को प्रगट कराए–उसी में धर्मबुद्धि पैदा होती है ।

देव-गुरू के यथार्थ स्वरूप को समझने पर ही पता चलता है कि परमात्मा कुछ देते नहीं हैं, परंतु उन तारकों के द्वारा निर्दिष्ट धर्म का जो पालन करता है, उसका कल्याण होता है और उन तारकों की आज्ञा की विराधना करनेवाले का अकल्याण होता है ।

परमात्मा तो राग-द्वेष से रहित हैं । अतः वे तो किसी का भला-बुरा नहीं करते हैं । सच्चे गुरु भी परमात्मा की आज्ञानुसार संयम के उपासक व कंचनकामिनी के त्यागी होते हैं । जगत् के जीवों को सिर्फ परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट मोक्ष-मार्ग बताते हैं । दुन्यवी वैभव में डूबे हुए गुरु नहीं हो सकते हैं और जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे उनको गुरु मानते भी नहीं हैं ।

दुन्यवी वैभव में पड़े हुए को गुरु मानना यह तो स्वयं को डुबाने का धंधा है।

इसी प्रकार धर्म के विषय में भी विवेकी बनो–**'विषय-विराग, कषाय-त्याग, आत्मगुणों में अनुराग और सत्क्रियाओं में अप्रमाद जिससे प्राप्त हो, वह सद्धर्म है । ऐसे सद्धर्म का जो पालन करता है, उसकी आत्मा का रक्षण हुए बिना नहीं रहता है ।'**

आप भी वस्तुस्थिति को समझकर मिथ्याबुद्धि से मुक्त बनें और सद्धर्म के पालन में स्थिर बनकर अपनी आत्मा का रक्षण करनेवाले बनो, यही एक शुभाभिलाषा है ।

7
चार पुरुषार्थ

सुपा **पोष वदी 14, वि.सं. 1994,**
दि. 30-01-1938, रविवार

इस दुनिया में **'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष'** ये चार पुरुषार्थ माने जाते हैं । चारों पुरुषार्थ को उपादेय माननेवाले समझते हैं कि हर व्यक्ति को अपने-अपने उचित समय में चारों पुरुषार्थों का सेवन करना चाहिए । इनमें से किसी एक की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि चारों पुरुषार्थों का सेवन ही दुःख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति का मार्ग है ।

अनंतज्ञान के योग से सुख-दुःख के वास्तविक निदान और सच्चे सुख के ज्ञाता ज्ञानी पुरुष फरमाते है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ जगत् में माने जाते हैं, किंतु अर्थ और काम तो नाम के ही पुरुषार्थ है । परमार्थ से तो वे दोनों अनर्थभूत ही है । अर्थभूत पुरुषार्थ एक मात्र मोक्ष ही है और संयम आदि दश प्रकार का धर्म उसका कारण है ।

इस दृष्टि से देखा जाय तो धर्म ही सच्चा पुरुषार्थ हैं क्योंकि धर्म पुरुषार्थ की साधना में मोक्ष पुरुषार्थ की साधना आ जाती है । धर्म की पूर्ण आराधना के फल स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ।

मोक्ष का सुख ही सच्चा सुख है । वह सुख, दुःख के लेश से भी रहित, संपूर्ण तथा कभी भी नष्ट नहीं होने के स्वभाववाला है ।

सच्च सुख मोक्ष में ही है :–

जगत् के जीवों को ऐसा ही सुख चाहिये क्योंकि किसी को ज्यादा सुख में थोडा भी दुःख आ जाय तो वह पसंद नही आता है । जब तक पूर्ण सुख न मिले तब तक सुख पाने की इच्छा बनी रहती है । अपूर्ण सुख भी दुःखरूप बन जाता है । अतः हर व्यक्ति चाहता है कि मेरा सुख स्थायी बना रहे ।

अज्ञानता के कारण भले ही संसारी जीव स्वयं को पसंद सुख के यथार्थ स्वरूप को अभिव्यक्त कर सके तो भी उनकी मनोदशा समझ ली जाय तो संक्षेप में कह सकते हैं कि उन्हें दुःख के लेश रहित संपूर्ण स्थायी सुख चाहिये ।

जहाँ ऐसे सुख की बात आती है, वहाँ अपने को ज्ञानी मानकर दुनिया को सच्चे सुख का मार्ग बतलाने का दावा करनेवाले अपूर्ण ज्ञानी मोहित हो जाते हैं, परंतु जो अनंतज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा है वे तो सबकुछ जानते हैं । वे फरमाते है कि–**'जगत् के जीवों को जो दुःख के लेश-रहित, संपूर्ण और शाश्वतसुख चाहिये वह सुख दुनिया में कहीं नहीं मिल सकता है, ऐसा सुख तो सिर्फ मोक्ष में है ।'**

दुन्यवी लोग पौद्गलिक पदार्थों के योग में सुख की कल्पना कर रहे हैं, परंतु पौद्गलिक योग से सर्वथा मुक्त बनने पर ही ऐसे वास्तविक सुख का पा सकते है ।

अपनी आत्मा जड़ कर्म के योग से सर्वथा मुक्त बनकर मोक्ष प्राप्त करेगी, तभी दुःख के लेश रहित, संपूर्ण व स्थायी सुख पा सकती है । इसी कारण ज्ञानी भगवंत मोक्ष की साधना को ही प्रधानता देते हैं ।

धर्म के सेवन बिना मोक्ष की प्राप्ति अशक्य है, इसलिए ज्ञानी फरमाते हैं–**'अर्थ और काम ये नाम के ही पुरुषार्थ हैं । मोक्ष ही अर्थभूत है और संयम आदि दशविध धर्म उसका कारण है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि मोक्ष के लिए ही धर्म का सेवन करना चाहिये ।'**

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में अर्थ और काम को नाम के ही पुरुषार्थ कहे हैं ।' ज्ञानीमहापुरुषों ने जो यह बात कही हैं, उसके पीछे रहस्य रहा हुआ है । **'अनंतज्ञानी किस कारण से अर्थ और काम पुरूषार्थ को नाम से पुरूषार्थ कहते है'** इसका कोई भी सद्बुद्धिशाली उचित विचार करे तो वो इस बात को समझ सकता है ।

अर्थ और काम की प्राप्ति स्वतंत्ररूप से नहीं है, परंतु उनमें अन्य वस्तु की अपेक्षा रहती है । आप सभी जानते हैं कि दुनिया के सभी लोग अर्थ और काम के लिए रात-दिन मेहनत करते हैं । अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए ही विचार और प्रवृत्ति करते हैं । अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए

अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं फिर भी हम देखते हैं कि दुनिया में श्रीमंत कितने और गरीब कितने ? भोग की सामग्री से संपन्न कितने और भोग की सामग्री से रहित कितने ?

अर्थ और काम के लिए अपनी पूरी ताकत लगाने पर भी अर्थ और काम से संपन्न कितने ? शायद हजारों में एक भी मिलना मुश्किल है ।

इससे स्पष्ट है कि पुरुषार्थ करने पर भी इच्छित की प्राप्ति सभी को नहीं होती है ।

अर्थ और काम की प्राप्ति सिर्फ पुरुषार्थी बनने से नहीं होती हैं, उसके लिए किसी अन्य पदार्थ की अपेक्षा रहती है ।

भाग्य बिना अर्थ-काम की प्राप्ति नहीं :–

अर्थ और काम की प्राप्ति इस जन्म के पुरुषार्थ के अधीन होती तो किसी को भी पुरुषार्थ किए बिना अर्थ-काम की प्राप्ति नहीं होनी चाहिये, लेकिन ऐसा नहीं होता है, क्योंकि कई लोग ऐसे स्थान में जन्म लेते हैं, जिन्हें बिना श्रम किए अर्थ-काम की प्राप्ति हो जाती है । राजा व श्रीमंत के घर जन्म लेकर राजा व श्रीमंत बननेवालों ने इस जन्म में कौनसा पुरुषार्थ किया था ?

किसी को बिना किसी मेहनत के विपुल संपत्ति का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है, उसमें इस जीवन की मेहनत कहाँ थी ?

इससे सिद्ध होता है कि सिर्फ इस जन्म के पुरुषार्थ से अर्थ-काम की प्राप्ति नहीं होती है, परंतु पुरुषार्थ करने पर भी उसी को अर्थ-काम की प्राप्ति होती हैं, जिसने पूर्व भव में पुण्यकर्म का उपार्जन किया हो ।

जिसने पूर्व भव में पुण्य उपार्जन नहीं किया, उसे लाख प्रयत्न करने पर भी इस जन्म में इच्छानुसार अर्थ-काम की प्राप्ति नहीं होती है ।

कई ऐसे दृष्टांत हैं–जिसमें मुनिम अपनी बुद्धि से पेढ़ी चलाता हो और हजारों रुपयों की आय होती है, परंतु वही मुनिम स्वतंत्र धंधा करे तो उसे खोना पड़ता है ।

इसका कारण क्या ?

कारण यही है–पेढ़ी के मालिक का भाग्य ।

मुनिम का भाग्य तो उसके वेतन जितना ही है । इस कारण मेहनत उसकी होने पर भी भाग्य के कारण सेठ को हजारों रुपए मिलते हैं ।

इसी प्रकार अर्थ–काम की प्राप्ति में भाग्य की प्रधानता हैं, इसीलिए अर्थ–काम नाम के ही पुरुषार्थ हैं, यह बात यथार्थ सिद्ध होती है ।

जिस प्रकार बिना श्रम किए अर्थ-काम की प्राप्ति किसी भाग्यशाली को ही होती है, उसी प्रकार अर्थ-काम का भोग भी भाग्यशाली ही कर सकता है । भाग्य न हो तो घर में अनाज के ढेर होने पर भी मुंग के पानी या छाश के पानी पर जीना पड़ता है ।

भाग्य-योग से प्राप्त अर्थ-काम का भोग कर सके, उसके लिए भी भाग्य की अपेक्षा तो रहती ही है । जिसका भाग्य नष्ट हो गया हो, वह लाख कोशिश करे तो भी उसे राजगद्दी छोड़नी पड़ती है । बड़े श्रीमंत को भी दर-दर भीख मांगनी पड़ती है । कई बार तो भिखारी से भी बदतर हालत हो जाती है ।

इस प्रकार अर्थ-काम की प्राप्ति, उनका भोग और उनका संरक्षण इस जन्म के पुरुषार्थ के अधीन नहीं है । इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दुनिया भले ही अर्थ और काम का पुरुषार्थ रूप में स्वीकार करे, लेकिन अर्थ और काम नाम के ही पुरुषार्थ हैं ।

अब हम धर्म पुरुषार्थ का विचार करेंगे । इस दुनिया में अर्थ-काम की जो अनुकूलता प्राप्त होती हैं, वह पुण्य के योग से तथा जो कुछ विडंबनाएँ प्राप्त होती हैं, वह पाप के योग से होती हैं । इस बात में सभी आस्तिक दर्शनकार एकमत हैं ।

पुण्य बिना धन-दौलत और इन्द्रिय सुख की प्राप्ति नहीं होती है । इस बात में सभी को विश्वास है । सत्कर्म से पुण्य और दुष्कर्म से पाप बंध होता है । यह बात भी सभी को मान्य है ।

सत्कर्म भी धर्म का ही एक प्रकार है । इस बात से आप सहमत हो तो यह मानना पड़ेगा कि धर्म बिना अर्थ-काम की भी सिद्धि नहीं होती है । इससे धन-दौलत और इन्द्रिय सुख की प्राप्ति भी धर्म बिना नहीं होती है, यह सिद्ध हो जाता है । अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति धर्म बिना नहीं होती है । इस अपेक्षा से सोचा जाए तो दुनिया में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये

चार पुरुषार्थ प्रसिद्ध होने पर भी धर्म ही सच्चा पुरुषार्थ है, यह बात सिद्ध हो जाती है ।

इतना होने पर भी ज्ञानियों ने अर्थ-काम को नाम का ही पुरुषार्थ कहा है, परंतु मोक्ष को नाम का पुरुषार्थ नहीं कहा है । इसका कारण है– **सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए मोक्ष ही प्राप्त करने योग्य वस्तु है ।**

जहाँ दुःख का नामोनिशान नहीं, सुख की अपूर्णता नहीं, जहाँ सुख कभी घटनेवाला और नष्ट होनेवाला नहीं, ऐसा स्थान एक मात्र मोक्ष ही है । ऐसे स्थान की प्राप्ति हो तो ही सुख के संदर्भ में संसारी जीवों की जो इच्छा है, वह पूर्ण हो सकती है । इसी कारण धर्म से अर्थ, काम और मोक्ष इन तीनों की प्राप्ति होने पर भी अर्थ-काम की प्राप्ति के लिए धर्म करने का निषेध कर एक मात्र मोक्ष के लिए धर्म करने की आज्ञा फरमाई है ।

मोक्ष की प्राप्ति उत्कृष्ट धर्म बिना नहीं होती है, अतः यह सिद्ध होता है कि सर्व सुख का मूल धर्म ही है । यह बात सिद्ध होने पर भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को एक समान पुरुषार्थ गिनना, क्या अज्ञानता नहीं है ?

अनंतज्ञानी परम उपकारी परमात्मा तो अर्थ और काम को हेय गिनते हैं और एक मात्र मोक्ष के ध्येय से धर्म करने का उपदेश देते हैं ।

मोक्ष क्या है ? मोक्ष अर्थात् अपनी आत्मा के स्वरूप का पूर्ण प्रकटीकरण ! पुण्य और पाप से सर्वथा मुक्त बनना, उसी का नाम मोक्ष है ।

जब तक आत्मा पुण्य-पाप से लिप्त होती है, तब तक आत्मा शुद्ध स्वरूपवाली नहीं है । अभी अपनी आत्मा पुण्य-पाप के अधीन है । पुण्योदय से अनुकूल और पापोदय से प्रतिकूल सामग्री प्राप्त करती है । इस स्थिति को दूर किए बिना एकांत सुखमय स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती है।

हमें दुःख रहित, पूर्ण और शाश्वत सुख चाहिये । दुनिया में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो शाश्वत काल टिक सके । पुण्य भी शाश्वत काल टिकनेवाला नहीं है ।

शाश्वतकाल रहनेवाला एक मात्र आत्म स्वरूप है । आत्म-स्वरूप

प्रकट हो तो शाश्वत सुख मिले । स्व-स्वरूप की प्राप्ति बिना आत्मा एक स्वरूप में शाश्वतकाल टिक नहीं सकती । क्योंकि पुण्य-पाप के योग से स्थिति बदलती रहती है । यह स्थिति तभी बदल सकती है, जब आत्मा आत्म-स्वरूप को प्राप्त करेगी । आत्म-स्वरूप की प्राप्ति भी तभी होगी, जब आत्मा पुण्य-पाप से मुक्त बनेगी ।

पुण्य और पाप, इन दोनों से मुक्त होने का साधन एक मात्र धर्म है । मोक्ष के उद्देश्य से किए गए धर्म से आत्मा पर लगे कर्मों की निर्जरा होने लगती है । उस समय पुण्य का बंध भी हो तो वह पुण्य आत्मा को मोक्ष की साधना में सहायक बनता है अर्थात् उस पुण्यबंध में मोहित होने जैसा नहीं है । वह पुण्य तो अर्थ काम की उत्तम सामग्री देता है फिर भी वैराग्य जीवित रहता है, जीवित रखता है । अतः आत्मा उस सामग्री को मोक्षसाधना में सहायक बना सकती है ।

स्वभाव-रमणता में सच्चा सुख :–

धर्म से अर्थ-काम की प्राप्ति अवश्य होती है, परंतु अर्थ-काम की प्राप्ति के ध्येय से धर्म का आचरण नहीं करना चाहिये । धन-दौलत और इन्द्रिय-सुख शाश्वत नहीं हैं । धर्म के प्रभाव से धन-दौलत और इन्द्रिय सुख मिलता तो है, परंतु अल्पकाल के लिए !

इन्द्रिय सुख के भोग में जिस कर्म का बंध होता है, वह कर्म आत्मा को दुर्गति में ले जाता है।

अर्थ-काम की वासना तो आत्मा को सच्चे सुख से दूर रखनेवाली है । उस वासना को दूर कर आत्म-स्वभाव प्रकट करने की भावना करनी चाहिये । 'अर्थ-काम से सुख मिलता है'–यह बात आज सभी मान बैठे हैं, परंतु अर्थ-काम से प्राप्त सुख में लुब्ध बनने से कितने दुःख उठाने पड़ते हैं, यह बात भूल जाते हैं ।

शाश्वत सुख पाना हो तो अल्पकालीन सुख का लोभ छोड़ना ही चाहिये ।

जहाँ दुःख न हो ऐसा सुख चाहिये तो वैसे निर्दोष सुख को प्राप्त करो कि जिसे भोगने से भी पापबंध का संभव न हो । वह सुख परवस्तु से मिलता नहीं है ।

पौद्‌गलिक पदार्थों से **'पर'** रहनेवाली आत्मा ही आत्म-स्वभाव की रमणता का शाश्वत सुख पा सकती है–इससे स्पष्ट है कि कल्याण के अर्थी को अर्थ-काम त्याज्य मानना चाहिये और मोक्ष के हेतुभूत धर्म को ही उपादेय मानना चाहिये ।

अर्थ–काम की प्राप्ति अत्यधिक प्रमाण में हो जाय तो भी उसकी साधना का अंत नहीं आता है, जबकि धर्म के फलस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाने पर धर्म-साधना का अंत आ जाता है ।

अत्यधिक श्रम से प्राप्त अर्थ-काम भी जीवन के अंत समय तक रहते हैं । फिर क्या ? मरने के बाद धन-दौलत और यह शरीर भी यहीं रह जाते हैं ।

अर्थ और काम की इच्छा का भी कोई अंत नहीं है क्योंकि उसकी पूर्णतया प्राप्ति किसी को भी नहीं होती है । जबकि मोक्ष की इच्छा का अंत है, क्योंकि आत्मस्वरूप पूर्णरूप से प्रकट हो सकता है ।

अर्थ-काम का सुख अवश्य नष्ट होता है जबकि मोक्ष का सुख कभी नष्ट नहीं होता है या कम भी नहीं होता है।

अपूर्ण, दुःखमिश्रित और अल्पकालीन अर्थ-काम के सुख के अर्थी बनकर दुःखरहित, संपूर्ण और शाश्वत सुख की उपेक्षा करना क्या उचित है ?

इसीलिए मोक्षसाधक धर्म का ही आचरण करना चाहिये ।

दुनिया में ऐसे बहुत से जीव हैं जो धर्म और मोक्ष को मानते ही नहीं हैं । ज्ञानियों ने दुन्यवी जीवों की भिन्न-भिन्न कक्षाएँ बतलाई हैं । जो धर्म और मोक्ष को मानते नहीं हैं, उनकी बात छोड़ दो, लेकिन आप सभी तो चारों पुरुषार्थों को माननेवाले हो । **'मानते हो या नहीं'** इस बात का पता भी अभी किये जानेवाले चार पुरुषार्थ को माननेवालों के वर्णन से हो जायेगा ।

'दुनिया में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को अपने-अपने उचित समय में सेवन करना चाहिए'–ऐसी मान्यतावाले भी बहुत से लोग हैं । वे जीव धर्म और मोक्ष की तरह अर्थ और काम को भी

साधने योग्य मानते हैं । परंतु वे भी अर्थ और काम की अपेक्षा धर्म प्रधान है, ऐसा मानते हैं, क्योंकि धर्म के हनन में तीनों का हनन है, ऐसी उनकी मान्यता है । वे लोग चारों पुरुषार्थ को मानते अवश्य हैं, परंतु अवसर आने पर अर्थ-काम को छोड़ने योग्य भी मानते हैं । ऐसा नहीं माननेवाले लेकिन **'हम चार पुरुषार्थ को मानते हैं'** ऐसा कहनेवाले वस्तुतः चार पुरुषार्थ के नहीं, सिर्फ अर्थ-काम के उपासक हैं ।

दंभ छोड़ो :–

चारों पुरुषार्थों के सेवन की बात करनेवाले अधिकांश लोग अपने अर्थ–काम के दासत्व का बचाव ही करते हैं । **'स्वयं अर्थ-काम के दास हैं'** इस बात का स्वीकार नहीं करना है, इसलिए **'चारों पुरुषार्थ के सेवन की बात'** करते हैं । परंतु ऐसे दंभ सेवन से क्या फायदा ? मानो कि ऐसे दंभ सेवन से **'आप सिर्फ अर्थ-काम के दास नहीं हैं, धर्म और मोक्ष का भी सेवन करनेवाले हो ऐसा कोई मान ले लेकिन अर्थ-काम के दासत्त्व के फलस्वरूप हो रहा पापबंध क्या अटक जायेगा ?'** ऐसे दंभ सेवन से तो पाप की ही वृद्धि होती है ।

कोई हमें धर्मी मान ले, इतने मात्र से हमारा कल्याण होनेवाला नहीं है । कोई हमें अधर्मी मान ले, इतने मात्र से हमारा अकल्याण होनेवाला नहीं है । दुनिया धर्मी कहे या न कहे, सच्चे धर्मी का कल्याण अवश्य होनेवाला ही है ।

अधर्मी होने पर भी दुनिया धर्मी कहे तो भी अधर्म के योग से अकल्याण होता ही है ।

अतः **'लोक साक्षी से अपना माप न निकाले परंतु आत्म-साक्षी से माप निकाले !'**

अपनी आत्मा को पूछे–**'तुझे अर्थ–काम ही पसंद है या धर्म और मोक्ष भी पसंद है ?'**

धर्म के योग से अर्थ-काम मिलता है, इसलिए धर्म पसंद है या धर्म से मोक्ष मिलता है या मोक्ष पाने की इच्छा है, इसलिए धर्म पसंद हैं ?

मोक्ष की इच्छा भी न हो और अर्थ-काम की प्राप्ति के लिए ही धर्म

पसंद पड़ता हो तो कहना पड़ेगा कि वास्तव में आपको धर्म पसंद नहीं है, बल्कि अर्थ-काम ही पसंद है । धर्म को तो आपने अर्थ-काम का दास बना दिया है ।

मोक्ष की इच्छा ही न हो तो चारों पुरुषार्थों को मानने की बात में भी सिर्फ असत्यवाद ही है ।

अर्थ और काम की तरह धर्म और मोक्ष को उपादेय माननेवालो में तो बहुत सी विशेषताएँ होती हैं । ऐसे जीव पैसे के लिए प्रयत्न करते हो तो उसमें भी नीति को छोड़ते नहीं हैं, ऐसे जीव पाप से डरते हैं, वे स्वच्छंदी नहीं होते हैं । उनमें गंभीरता आदि गुण भी होते हैं और जहां-जहां मोक्ष साधक धर्म का ज्ञान मिलता हो, वहाँ वे जाते भी हैं । वे जीव कदाग्रही नहीं होते हैं, बल्कि सत्य के स्वीकार करने में सरल होते हैं ।

ऐसी आत्माओं को सद्गुरु का योग शीघ्र मिल जाता है और वह योग उन्हें जल्दी फलता है, क्योंकि वे धर्म और मोक्ष को भी साधने योग्य मानते हैं ।

धन और इन्द्रिय सुख के लिए धर्म को छोड़नेवाला या धर्म की उपेक्षा करनेवाला, धर्म और मोक्ष को मानता है, ऐसा कैसे कह सकते हैं ?

धर्म को माने और पाप से डरे नहीं, यह कैसे हो सकता है ? पाप के भय और मोक्ष की अभिलाषा बिना सद्धर्म पर रुचि नहीं होती है ।

सद्धर्म के आचरण से मोक्ष पाने की इच्छावाला धर्म में सुस्थिर बनने के लिए अवश्य प्रयत्नशील होता है, परंतु कदाग्रही नहीं होता है ।

सत्य-असत्य के स्वरूप को समझने के बाद असत्य को पकड़ने और सत्य के अस्वीकार का दुराग्रह नहीं होता है । वह तो आत्महित के लिए सत्य का शोधक होता है । आत्म-हित के लिए जिसका त्याग जरूरी हो उसका त्याग और जिसका स्वीकार जरूरी हो, उसका स्वीकार करने में वह सरल होता है ।

अर्थ और काम को उपादेय मानने पर भी सच्चे हृदय से धर्म और मोक्ष को उपादेय माननेवाली आत्मा में इस प्रकार की योग्यता होती है । यह योग्यता अपने में है या नहीं ? इसकी जाँच करनी चाहिये ।

अर्थ और काम के साथ धर्म और मोक्ष को भी उपादेय माननेवाली आत्माएँ अपनी संतानों को सिर्फ अर्थ और काम का ही शिक्षण क्यों देती हैं ?

चारों पुरुषार्थों को सेवन योग्य माननेवाले अपने बीते हुए वर्षों का हिसाब लगाकर देखें कि अर्थ-काम की साधना में उनका कितना समय गया और मोक्ष के ध्येय से धर्म-साधना कितनी की ?

अर्थ-काम की साधना के शिक्षण के लिए कितना अभ्यास किया और मोक्ष-साधक तत्त्वों के अभ्यास के लिए कितना अभ्यास किया ? अर्थ-काम के लिए जितना पढ़े, जितना प्रयत्न किया, उससे शतांश भाग का भी प्रयत्न मोक्षसाधक धर्म जानने या उसके आचरण करने के लिए किया ?

आज तो सर्वत्र अर्थ–काम का ही शिक्षण दिया जाता हैं । अर्थ-काम की सेवा लगभग चोबीसों घंटे होती है, जबकि धर्म और मोक्ष की तो सिर्फ बातें होती हैं । अर्थ-काम जितना भी मोक्ष-साधक धर्म उपयोगी है, ऐसी आपकी मान्यता होती तो आज यह परिस्थिति न होती । आज विरल आत्माएँ ही मोक्षसाधक धर्म को सच्चे हृदय से जानती हैं और यथाशक्य आचरण करती हैं ।

लोकरंजन न करे :–

अनंत उपकारी, अनंतज्ञानी श्री वीतराग परमात्मा फरमाते हैं कि **'अर्थ और काम को त्याज्य और मोक्षसाधक धर्म को उपादेय मानों ।'** परंतु आज अर्थ और काम का ही शिक्षण दिया जाता है, अर्थ और काम के दासत्व में ही सुख माना जाता है । आत्मा के स्वरूप और आत्मा के मोक्ष का विचार भी नहीं आता है । धर्म का भी अर्थ–काम के साधन के रूप में ही उपयोग किया जाता हो, वहाँ **'अर्थ-काम हेय है और मोक्ष-साधन धर्म ही उपादेय है'** यह बात उपदेश में कही जाय परंतु पसंद कहाँ पड़े ?

आपको पसंद पड़े या न पड़े परंतु जो हितकर बात है वह अवसर देखकर कहनी ही चाहिये, जिससे श्रोताओं में कोई सुयोग्य आत्मा हो तो उसे लाभ हो जाय । योग्य आत्मा को सत्य का प्रकाश मिल जाय तो उसे आत्म-हित की भावना जागृत हो सकती है ।

कड़वी भी बात यदि हितकर हो तो उसे कहने में ही दया है । माँ

अपने बीमार पुत्र को दबाव करके भी कड़वी दवाई पिलाती है, फिर भी वह निष्ठुर नहीं कहलाती है ।

उसी प्रकार साधु भी वीतराग परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट धर्म को जीवन में आत्मसात् कर जगत में उस धर्म का प्रचार करनेवाले होते हैं । वे साधु यदि आपको सच्ची व हितकारी बात न कहकर आपको खुश करने के लिए दूसरी ही बातें करें तो कहना पड़ेगा कि वे साधु परमात्मा के बताए मार्ग के प्रति वफादार नहीं हैं । इतना ही नहीं, वे दयाहीन भी हैं, क्योंकि यदि दयालु होते तो दूसरों के रोष के भाजन बनकर भी हितकर सच्ची बात ही कहते ।

जब सच्ची बात सामनेवाले के गले उतरेगी तो अवश्य ही उसका रोष उतर जाएगा और वह उपकार मानेगा ।

साधु को तो सच्ची हितशिक्षा ही देनी चाहिये और आपको भी अपनी भलाई के लिए सुसाधुओं की सच्ची हितशिक्षा को जीवन में आत्मसात् करने के लिए प्रयत्न करना चाहिये । यहाँ हर बात में **'हाँ'** कह दो और फिर घर जाने के बाद आचरण में लाने के लिए कुछ भी प्रयत्न न करो तो यह नुकसान साधु को नहीं किंतु आपको ही है, क्योंकि सुधर्म की साधना नहीं करोगे तो आप ही सच्चे सुख से वंचित रहोगे । सुसाधुओं को तो आप अमल करे या न करे पर भी परहितकर प्रयत्न से उन्हें लाभ मिलता ही है ।

अर्थ-काम की वासना से संसार-परिभ्रमण :–

धन-दौलत और इन्द्रिय-सुख की प्राप्ति के लिए किए गए धर्म को मोक्षसाधक धर्म मानकर अपने आपको ठगे नहीं । नीति का पालन करने पर भी आज धर्म से च्युत होनेवाले बहुत हैं । नीति के नियमों का पालन करें और दयाधर्म को भूल जाय तो उसे **'धर्मी'** कैसे कह सकते हैं ? **धर्म का मूल तो दया है ।** अर्थ-काम को भी साधे और नीतिमान के रूप से ख्याति भी प्राप्त हो जाय, इसके लिए नीति का पालन करनेवाले अवसर आने पर दयाहीन भी बन जाते हैं । अर्थ-काम की वासना जीव को किस प्रकार भान भूलाती हैं, उसका भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये ।

धर्म इस तरह करो जो आपको अर्थ-काम के दासत्व का सूचक न हो, परंतु मोक्ष को निकट लानेवाला हो । मोक्ष के लिए ही धर्म का

आचरण करना चाहिये । मोक्ष-साधक धर्म साधने के लिए अर्थ-काम को द्वेष मानना चाहिये ।

अर्थ–काम में तीव्र रस होने के कारण किसी धनवान् को देखते ही धनवान् बनने की इच्छा हो जाती है, किंतु धर्म की सच्ची रुचि नहीं होने के कारण किसी साधु को देखकर **'मैं साधु कब बनूंगा ?'** ऐसी भावना नहीं होती है ।

अर्थ–काम की वासना में फल स्वरुप आत्मा अनंतकाल तक संसार में भटकी है और सच्चे सुख से वंचित रही है । अब इस भव में कुछ समझने का अवसर मिला है तो उसका पूरा उपयोग कर लेना चाहिये क्योंकि आत्मा के शुद्ध स्वरुप को प्राप्त किए बिना दुःख रहित संपूर्ण और शाश्वत सुख मिलनेवाला नहीं है ।

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों में अर्थ और काम नाम से ही पुरुषार्थ है । धर्म ही सच्चा पुरुषार्थ है, उस धर्म की आराधना मोक्ष के ध्येय से ही करना चाहिये यही कल्याण का उत्तम मार्ग है ।' इस बात पर जिसे विश्वास हो उसे तो धन-दौलत व इन्द्रिय सुख का सर्वथा त्याग कर एक मात्र मोक्षसाधक धर्म की आराधना में ही पूरा सामर्थ्य लगाकर तत्पर बनना चाहिये ।

अर्थ–काम की वासना से पर बने हुए एक मात्र मोक्ष की अभिलाषा से ही संसार का त्याग कर अनंतज्ञानी महापुरुषों द्वारा निर्दिष्ट निष्पाप-संयम जीवन का पालन करनेवाले और जगत् के जीवों को भी मोक्षसाधक धर्म का ही उपदेश देनेवाले सच्चे सद्गुरु हैं ।

इस जगत् में वे ही श्रेष्ठ महात्मा हैं । ऐसे उत्तम जीवन के पालन में असमर्थ आत्माएँ भी संसार में रहकर धर्म की शक्य आराधना कर सकती हैं ।

अर्थ–काम को हेय मानो, अर्थ-काम के लिए प्रयत्न करना पडे तो भी धर्म को न छोड़े, जितना मिले उसमें संतोष माने, इन्द्रियों पर नियंत्रण रखे, निरपराधी त्रस जीवों को न मारे, भयंकर झूठ न बोले, चोरी न करे, स्वस्त्री में संतोष रखे, धन का अधिक संग्रह न करे ।

इतना भी न हो सके तो कम से कम अर्थ–काम को हेय और मोक्षसाधक धर्म को उपादेय मानकर मोक्षसाधक धर्म के आचरण की अभिलाषा करे, अपने जीवन में धर्म का आचरण न देख पश्चात्ताप करे और पाप से डरता रहे, उतना भी करे तो भी वह आत्मा निकट भविष्य में अवश्य धर्म का आचरण कर मोक्ष में जा सकेगी ।

इन सबका मूल देव-गुरु-धर्म की सच्ची श्रद्धा है। सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर सच्ची श्रद्धा किए बिना इनमें से कुछ भी संभव नहीं है ।

देव तो वीतराग ही है । वीतराग की आज्ञानुसार निर्ग्रंथपने का पालन करते हुए, निर्ग्रंथ धर्म का ही उपदेश देनेवाले गुरु हैं तथा धर्म वो ही है, जो विषय-कषाय से आत्मा को मुक्त कर आत्म-स्वरूप प्राप्त करानेवाला हो ।

अर्थ-काम की वासना बढ़ानेवाले, अर्थ-काम को उपादेय माननेवाले, 'अर्थ, काम से कल्याण है'–ऐसा उपदेश देनेवाले न देव है, न गुरु है और न धर्म है ।

इस प्रकार दुनिया में प्रसिद्ध धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मे दो हेय हैं और दो उपादेय हैं । अर्थ-काम हेय है और धर्म-मोक्ष उपादेय हैं ।

मोक्ष के लिए ही धर्म का आचरण आवश्यक है । अतः अन्य कामनाओं का त्याग कर एक मात्र मोक्ष साधक–धर्म के आचरण में ही तत्पर बनो ।

जो आत्माएँ मोक्ष-साधक धर्म के आचरण में उद्यमशील बनेगी, वे आत्माएँ क्रमशः दुःखरहित, संपूर्ण और शाश्वत मोक्ष-सुख प्राप्त करेगी ।

सभी आत्माएँ मोक्ष-साधक धर्म के उपासक बनकर दुःख रहित, संपूर्ण और शाश्वत सुख प्राप्त करें, यही एक शुभाभिलाषा है ।

8

सच्चे सुख की साधना

मोरगाँव **पोष कृष्णा अमा., वि.सं. 1994,**
दि. 31-01-1938, सोमवार

इस जगत् में सभी प्राणी सुख के अभिलाषी हैं । अनंत उपकारी अनंतज्ञानी परमात्मा ने जगत् के जीवों को दुःख में से मुक्त बनने का मार्ग बतलाया है । वह मार्ग आज भी विद्यमान है, परंतु जगत् के जीव गतानुगति वृत्तिवाले हैं । इस कारण दुःख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति का पूरा निर्धार करते ही नहीं हैं ।

अपनी आँख के सामने देख रहे हैं कि सुख पाने और दुःख से मुक्त होने के लिए अनेक लोग रात-दिन मेहनत करते-करते मर गए किंतु न तो इनका दुःख गया और न ही उन्हें सच्चा सुख मिला । जिंदगीभर प्रयत्न करने पर उन्होंने जो-जो वस्तुएँ प्राप्त कीं, वे वस्तुएँ भी उनके साथ नहीं गई, इनके साथ तो सिर्फ पुण्य और पाप ही गया ।

जगत् के जीव यह सब दृश्य अपनी आंख के सामने देखने पर भी यह विचार नहीं करते हैं कि एक दिन हमें भी इस तरह जाना पड़ेगा और सुखी बनने की इच्छा होने पर भी यहां किए गए पापों के कारण दुःखी होना पड़ेगा ।

'पाप से प्राप्त वस्तुएँ यहां रह जाती हैं और पाप साथ चलता है'– यह बात जानने पर भी कुछ भी विचार किए बिना सभी की तरह स्वयं भी नाशवंत पदार्थों को पाने के लिए पाप करता है, क्या यह जैसी-तैसी मूढ़ता है ?

यह मूढ़ता दूर न हो और सुख-दुःख के वास्तविक कारणों को जानकर, ज्ञानियों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग को जानने का प्रयत्न न हो तब हमें दुःख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा हो तो भी क्या फायदा ?

दु:ख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति की अभिलाषा को सफल बनाना हो तो गतानुगतिकता की मूढ़ता का त्याग कर विवेकी बनना चाहिये और जगत् के जीवों को सुख-प्राप्ति का मार्ग बतानेवाले पूर्ण ज्ञानी तारक परमात्मा की आज्ञापालन के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिये ।

दुनिया के अनुसार चलोगे तो दुनिया के जीवों की जो हालत हुई हैं वह हालत आपकी भी होगी, यह स्पष्ट बात है । जीवन में पापों का पार नहीं और जिन वस्तुओं को पाने के लिए पाप किए, वे सब वस्तुएँ यहीं रह जाएगी । पाप साथ में आएंगे और उन पापों का फल अवश्य भुगतना पड़ेगा ।

सच्चे सुख को पाना हो तो प्रयत्नपूर्वक उसे भी प्राप्त कर सकते हैं । मुक्ति और सुख-प्राप्ति का मार्ग नहीं है, ऐसी बात नहीं है । मार्ग तो है उस मार्ग को जानकर उस मार्ग पर चले तभी लाभ हो सकता है ।

इस विचार के विचार में आप अपनी बुद्धि को कुंठित न बनाएँ, `परंतु विवेकपूर्वक वस्तुस्थिति को समझने का प्रयत्न करो और फिर समझपूर्वक गलत मार्ग को छोड़कर सच्चे मार्ग का स्वीकार करो सच्चे मार्ग के स्वीकार के बाद उस मार्ग की आराधना के लिए खूब प्रयत्न होगा, तभी सच्चा कल्याण हो सकेगा ।

`दु:ख का मूल पाप है'–** इस बात को कौन नहीं जानता ? **`पाप बिना दु:ख नहीं'– इस बात में कोई मतभेद नहीं है ।

`पाप से दु:ख आता है तो फिर दु:ख से बचने और सुख पाने के लिए पाप करना? यह क्या?'

यहाँ दो ही विकल्प हैं या तो यूँ कहो कि **`पाप किए बिना सुख नहीं है, इसलिए पाप करते हैं ।'** अथवा **`पाप से दु:ख मिलता है, यह जानने पर भी सुख के लिए मूढ़ता से पाप कर रहे हैं ।'**

आप अपने आपको कैसा मानते है ? :–

अपने आपको बुद्धिमान, कुशल व विद्वान माननेवाले ज्यादा और अपने आपको बुद्धिहीन, अकुशल और अज्ञानी माननेवाले बहुत कम । आज अधिकांश लोग अपने आपको बुद्धिमान कुशल और विद्वान मानकर

अभिमान से घूमते हैं । इस अभिमान के कारण आज दुनिया में तुच्छता बढ़ गई है और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के द्वार पर ताले लगा दिए गए हैं । इसी कारण सुसाधुओं की हितकर बातें अच्छी नहीं लगती है । महापुरुषों की बातों को हंबग (झूठी) कहा जाता है । कई बार तो सुसाधुओं को मूढ़ कहकर उनकी उपेक्षा की जाती है । परंतु वास्तव में मूढ़ कौन है ?–यह सोचना चाहिये ।

'पाप से दुःख आता है' यह मानकर पाप का त्याग करनेवाले और **'धर्म से सच्चे सुख की प्राप्ति होती है'** यह समझकर धर्म का सेवन करनेवाले मूढ़ हैं या सुख की आकंठ इच्छा होने पर भी, **'पाप से दुःख आता है'** यह जानने पर भी तथा **'धर्म से सच्चा सुख मिलता है'** ऐसा बोलने पर भी धर्म से दूर रहकर धर्म का मज़ाक करनेवाले मूढ़ हैं ?

सच्चा बुद्धिशाली तो वो ही है जो **'पाप से दुःख आता है'** और **'धर्म से सच्चा सुख मिलता है'** यह जानने के बाद पाप से छूटने और धर्म के आचरण में ही अपनी पूरी शक्ति लगा देता है ।

विचक्षण बनो :–

'पाप के योग से हम दुःखी बनते हैं और धर्म के योग से सुखी बनते हैं' यह बात आपको मान्य है या नहीं ? शरीर से भिन्न आत्मा के अस्तित्व का स्वीकार करनेवाला ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो **'पाप से दुःख और धर्म से सुख'–** नहीं मानता हो ।

सब आस्तिक दर्शनकार **'धर्म से सुख और पाप से दुःख'** इस बात से सम्मत हैं ।

आप किसी न किसी धर्म को मानते हो न ? क्या आपका धर्म **'धर्म से दुःख और पाप से सुख की बात करता है ?'**

यदि नहीं, तो फिर दुःख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति के लिए पाप करते हुए क्यों नहीं डरते हो और धर्म की उपेक्षा क्यों करते हो ?

आप कहते हैं, **'मैं अमुक धर्म को मानता हूँ'**, परंतु आप सोचें **'क्या आप उस धर्म को मानते हैं ?'** यदि **'धर्म को मानते हो तो फिर धर्म की उपेक्षा कर पाप-सेवन में ही जिंदगी पसार क्यों करते हो ? क्या**

आपको सुख पसंद नहीं और दुःख पसंद है ?' आपकी प्रवृत्ति का ध्येय सुख-प्राप्ति है ? या दुःख-मुक्ति है ? यदि ऐसा हो तो दुःख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति के लिए प्रयत्न क्यों करते हो ? आप जो कुछ करते हैं, उसका ध्येय दुःख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति ही है न ?

आपको दुःख पसंद नहीं और सुख पसंद है, यह निश्चित है, क्योंकि आप जो कुछ विचार या प्रवृत्ति करते हैं । वह इसी ध्येय से करते हो परंतु आपका ध्येय निष्फल जाता है क्योंकि आप **'पाप से दुःख मानने पर भी पाप का सेवन करते हैं'** और **'धर्म से सुख'** मानने पर भी धर्म की उपेक्षा करते हो, क्या वह मूढ़ता (मूर्खता) नहीं है ?

'मूढ़ता' शब्द जिन्हें अखरता हो वे सोचे कि **'जीवन में इतने वर्ष बीत गए–क्या कभी ऐसा विचार किया था ?'**

पाप से दुःख जानने के बाद पाप से बचने के लिए कितना प्रयत्न किया ? **'धर्म से सुख जानने के बाद धर्म सेवन के लिए कितने प्रयत्न चालू हैं ?'**

सुसाधु नहीं चाहते हैं कि आप हंमेशा मूढ़ बने रहो । वे तो चाहते हैं–**'आप विचक्षण बनें ।'** विचक्षण बनकर दुःख-मुक्ति के लिए पाप त्याग और सुख-प्राप्ति के लिए धर्म सेवन में तत्पर बनें, क्योंकि पाप-त्याग बिना दुःख-मुक्ति नहीं और धर्म-सेवन बिना सुख-प्राप्ति नहीं है ।

सुसाधु की भावना 'समस्त विश्व का कल्याण हो' :–

'समस्त विश्व का कल्याण हो' इस पवित्र भावना के साथ **'मेरे कारण किसी जीव का अकल्याण न हो जाय'** ऐसी भावना रखते हुए सुसाधु धर्ममय जीवन जीते हैं और आवश्यकतानुसार जगत् के जीवों को कल्याण का मार्ग बतलाते हैं ।

सुसाधु जगत् के जीवों को **'पाप छोड़ो और धर्म का सेवन करो'** का ही उपदेश देते हैं, क्योंकि पाप-त्याग बिना दुःख-मुक्ति नहीं और धर्म के आचरण बिना सुख-प्राप्ति नहीं ।

पाप मात्र से अलिप्त रहने के लिए तथा धर्ममय जीवन जीने के लिए इन्द्रियों का निग्रह, संयम पालन, पाप-संग त्याग करना पड़ेगा और

वीतराग परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट क्रियाओं में अप्रमत्तभाव से प्रयत्न करना पड़ेगा । संसार में सर्वश्रेष्ठ यही जीवन है । ऐसे त्याग और संयम में ही सच्ची गुरुता रही हुई है । सच्ची गुरुता के अभाव में गुरु बनकर बैठे हुए न तो अपना कल्याण कर सकते हैं और न ही दूसरों का ।

सिर्फ नाम से नहीं गुणों से गुरु बनो । गुरु बनने की इच्छा के बजाय साधुता पाने की इच्छा करे ।

पाप से बचने का सुलभ उपाय :–

आजकल लोगों को सुख चाहिये किंतु संयम पसंद नहीं है। **'सच्चा सुख कहाँ है और कैसे मिल सकता है ?'** –यह सोचने के लिये फुर्सत नहीं है । जिन प्रवृत्तियों से किसी को सुख नहीं मिला है, वे प्रवृत्तियाँ गतानुगतिकता से हो रही हैं ।

'दूसरे को भले ही दुःख हो, मुझे सुख मिलना चाहिये' यह वृत्ति बढ़ रही है ।

अपने सुख के लिए हम दूसरों को दुःखी करें तो हमें सुख मिलेगा या दुःख ?– यह भी विचार नहीं आता है ।

सच्चे कल्याण साधक वे हैं जो अपने सुख के लिए दूसरों को दुःख नहीं देते हैं ।

पाप से बचने के लिए किसी महात्मा ने सुंदर उपाय बतलाया है ।

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।'

जो वर्तन अपनी आत्मा के लिए प्रतिकूल हो वह आचरण दूसरों के प्रति न करे ।

अपने को कोई दुःख दे, यह हमें पसंद नहीं है तो हमें भी किसी को दुःख नहीं देना चाहिये । कोई अपने साथ झूठ बोले तो हमें पसंद नहीं, कोई अपनी वस्तु की चोरी कर ले यह भी हम को पसंद नहीं, अतः हमें भी झूठ नहीं बोलना चाहिये और चोरी नहीं करनी चाहिये । इस प्रकार हर बात में समझ ले और विवेकी बनकर आचरण करने लगोगे तो जीवन सुधर जाएगा । जीवन में पाप दूर होगा और धर्म आ जाएगा ।

आज स्वार्थवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गई है कि अपने सामान्य स्वार्थ के लिए भी व्यक्ति अन्य जीवों के प्राण ले लेता है । सांप ने नहीं काटा हो तो भी **'यह विषैला प्राणी होने से कदाचित् काट लेगा'** इस भय से उसे मार दिया जाता है । **आज स्वार्थी मनुष्य जितना हिंसक व क्रूर बन गया है, उतने हिंसक व क्रूर तो हिंसक व विषैले प्राणी भी नहीं हैं ।** साँप विषैला होने पर भी उस साँप से मदारी अपनी आजीविका चलाता है । सिंह, बाघ, चित्ता आदि हिंसक होने पर भी सर्कसवाले उनसे अपनी कमाई करते हैं । इस दृष्टि से वे विषैले और हिंसक प्राणी भी मनुष्य की कमाई कराने में सहायक बनते हैं, जबकि अति स्वार्थी मनुष्य किसी को सहायक नहीं बनता है, बल्कि वह तो अनेकों का बुरा ही करता है ।

'साँप काट लेगा ।' इस भय से साँप को मारनेवाला क्या कम विषैला है ? **साँप के तो दाँत में जहर होता है, जब कि स्वार्थी मनुष्य के हृदय में जहर होता है ।**

ज्ञानियों द्वारा निर्दिष्ट हिताहित का विवेक जिसमें नहीं है, ऐसा व्यक्ति अपने विरुद्ध करनेवाले को क्या-क्या नुकसान नहीं पहुँचाता है ?

सरकारी सजा के भय से स्वार्थी मनुष्य भले ही शांति रखता होगा, परंतु उसके हृदय में तो इतना भयंकर जहर होता है कि वह अपने स्वार्थ के लिए सामनेवाले का खून भी कर सकता है ।

मनुष्य के हृदय में रहे जहर को दूर करने का काम धर्म करता है । जिसके हृदय में धर्म का प्रवेश होता है, उसके हृदय में से जहर दूर हो जाता है । आज मनुष्य के हृदय में इतना जहर उछल रहा हैं कि जिसके कारण संहार के साधन बढ़ रहे हैं । आज मनुष्य, मानवता छोड़कर राक्षस बनता जा रहा है । अपने स्वार्थ में बाधक बननेवाले का संहार किया जाता हैं, उसमें वीरता और सेवा मानी जाती है ।

आर्य देश में यह मनोवृत्ति नहीं होनी चाहिये, परंतु आज वातावरण बिगड रहा है यह भाव, भोग के लिए नहीं, त्याग के लिए है । यह ख्याल आए और उसे आचरण में लाया जाय तो वातावरण सुधर सकता है ।

दुन्यवी पदार्थों की ममता दूर हो और आत्म-सुख प्रकट करने की कामना उत्पन्न हो तब मनुष्य राक्षस मिटकर देव बन सकता है ।

आपको क्या बनना है, इसका निर्णय आप ही कीजिए। **'अनंतज्ञानियों की आज्ञानुसार पाप-त्याग और धर्म-सेवन का मार्ग बताना हमारा काम है, परंतु उसे आचरण में लाना तो आपके हाथ में है न ?'**

भोग का त्याग और संयम का सेवन, सिर्फ सिद्धांत की तरह जानने की वस्तु नहीं है, बल्कि उसका आचरण होना चाहिये।

'पाप से उपार्जित सभी वस्तुएँ यही रहनेवाली हैं और पाप साथ चलनेवाला है।' यदि ऐसा विश्वास हो तो पाप से बचने के लिए प्रयत्नशील बनों।

'पाप से दुःख और धर्म से सुख' इस बात पर आपको विश्वास है। इसलिए सीधी बात करता हूँ– पाप छोड़ो और धर्म का सेवन करो जिससे तुम्हारा दुःख चला जाय और सुख प्राप्त हो।

पाप से बचने का उपाय भी बताया है **'अपने को जो प्रतिकूल हो, ऐसा आचरण दूसरों के प्रति न करे।'**

धर्म के विषय में अनेक मतभेद हैं परंतु वास्तविक धर्म यही हैं जो आत्मा को समस्त कर्मों से मुक्त कर आत्मा के निर्मल स्वरूप को प्राप्त कराए।

आत्मा के मूल स्वरूप को पाने के लिए ही धर्म करना चाहिये अर्थात् हिंसादि पापों का मन, वचन और काया से करण, करावण और अनुमोदन द्वारा त्याग करना चाहिये और आत्मा को अनंतज्ञानी की आज्ञा के प्रति समर्पित कर देना चाहिये।

'एक साथ यह त्याग संभव न हो तो धीरे-धीरे इस कक्षा को पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये।' वीतराग परमात्मा की आज्ञा की आराधना में ही कल्याण है– **'इस बात को नहीं भूलना चाहिये।'** इस प्रकार आचरण करनेवाली आत्माओं का अवश्य कल्याण होगा, वे अनंत दुःख से मुक्त बनकर अनंत सुख प्राप्त करेंगे। जगत् के जीव यही चाहते हैं। अतः पापत्याग करके धर्मसेवन कर ईश्वर आराधना में लीन बनो, यही एक शुभाभिलाषा है।

9

मानव भव की सार्थकता

मोरगाँव **माघ शुक्ला 1, वि.सं. 1994,**
दि. 01-02-1938, मंगलवार

सभी धर्म शास्त्रकारों ने मनुष्य जन्म की महत्ता गाई है । **'मनुष्य जन्म श्रेष्ठ जन्म है'** यह सभी कहते हैं, परंतु इस जन्म की महत्ता किस कारण है, यह विचारणीय है ।

मनुष्य जन्म की महत्ता बतानेवाले उपकारी महापुरुष इस जन्म की उत्तमता बताते हुए मनुष्य जन्म को सफल बनाने का मार्ग भी बतलाते हैं ।

मनुष्य, तिर्यंच, देव और नरक इन चार गतियों में मनुष्य गति की महत्ता सबसे अधिक है । इसका कारण जानना चाहिये । अन्य तीन गतियों की अपेक्षा इस गति में कोई विशेषता नहीं होती तो इस गति को प्रधानता नहीं दी जाती । मनुष्य गति की प्रधानता उसकी विशिष्टता को आभारी है । मनुष्य यदि विशेषता से वंचित रह जाय तो उसकी प्रधानता का कोई अर्थ नहीं है ।

इन्द्रियों के विषय भोग की अपेक्षा मनुष्य जन्म श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि मनुष्यलोक की अपेक्षा देवलोक में इन्द्रिय-सुख सामग्री बहुत ज्यादा है । देवलोक में जिस शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श की सामग्री का योग है, वह मनुष्यलोक में नहीं है ।

इन्द्रिय सुख सामग्री की अपेक्षा तो देवलोक को ही ऊंचा मानना चाहिये क्योंकि देवलोक में अकल्प्य वैभव और भोगसुख की विपुल सामग्री है ।

स्वच्छंद आहार, विहार और भय आदि तो मनुष्य में होते हैं । उसी तरह पशुओं में भी होते हैं । नारक जीव केवल दुःखमय दशा का अनुभव करते हैं । इसलिए उनकी तो बात करने का कोई अर्थ नहीं है ।

मनुष्यलोक में देवलोक जैसी भोग सामग्री नहीं है फिर भी मनुष्य भव श्रेष्ठ माना गया है । इससे सिद्ध होता हैं कि भोग सामग्री की अपेक्षा मनुष्य जन्म की महत्ता नहीं है । इसी प्रकार स्वच्छंद आहार, विहार और भय के कारण भी मनुष्य जन्म की महत्ता नहीं है, क्योंकि तिर्यंचों में उसकी बहुलता है । तो फिर मनुष्य जन्म की महत्ता किस कारण है ? जिस कारण मनुष्य जन्म की महत्ता है, उस कारण को साधा जाय तो मनुष्य-जन्म की सफलता होगी ।

मनुष्य जन्म की महत्ता विवेक के कारण है । तिर्यंचों में वह विवेक आना मुश्किल है । कदाचित् आ जाय तो भी मनुष्य विवेक को जितना आचरण में ला सकता है, उतना तिर्यंच नहीं ला सकता है ।

देवताओं में भी उस प्रकार के त्याग का आचरण संभव नहीं है । मनुष्य ही आत्मा और शरीर का विवेक कर सकता है । मनुष्य जड़-चेतन के स्वरूप को समझ सकता है । आत्मा के कल्याण-अकल्याण का विवेकपूर्वक विचार मनुष्य कर सकता हैं । इस प्रकार की विचार सामग्री मनुष्य के पास संभव है और योग्यता प्राप्त मनुष्य उस विचार को आचरण में भी ला सकता हैं ।

तिर्यंचों के लिए विवेक का आचरण सर्वथा असंभव नहीं हैं, फिर भी जितना आचरण मनुष्य कर सकता हैं, उतना तिर्यंच नहीं कर सकता है ।

यद्यपि देव समझ सकते हैं किंतु मनुष्य की तरह आचरण करने में सर्वथा असमर्थ हैं । मनुष्य समझ सकता है और आचरण भी कर सकता है ।

क्या समझना और क्या आचरण करना ? जड़-चेतन के स्वरूप को समझकर, लोह-अग्नि की तरह चेतन को जड़ के योग से मुक्त करने की क्रिया करना ।

जड़-चेतन का जो वास्तविक स्वरूप है, उसे यथार्थ रूप से समझना और चेतन को जड़ के संयोग से दूर करने का प्रयत्न करना, इसी में मनुष्य जन्म की सार्थकता है । मनुष्य जन्म की महत्ता भोग के कारण नहीं, किंतु त्याग के कारण है ।

जो मनुष्य विवेक रहित होकर भोग में लीन बनता है उसमें और पशु में क्या भेद रहता है ? तिर्यंच भी खाते-पीते हैं और विषय सुख के पीछे भटकते हैं। मनुष्य भी वैसा ही जीवन जीए तो फिर मनुष्यपने की क्या महत्ता रही ?

सामग्री का सदुपयोग करो :–

हमें आर्य देश और आर्यकुल आदि सामग्रीवाला मनुष्य जन्म मिला है, अतः हम भाग्यशाली तो है ही। **'यह सामग्री पुण्य बिना नहीं मिलती है।'** पूर्व के पुण्ययोग से सामग्री तो मिल गई, परंतु अब क्या करना है ? **'वास्तविक विचार तो अब करना है। प्राप्त उच्च सामग्री का सदुपयोग न करें तो दुनिया में भी बेवकूफ (मूर्ख) कहलाते हैं।'**

ऊँची सामग्री के लिए की गई मेहनत असफल हो और दुरुपयोग के कारण खराब स्थिति प्राप्त हो, ऐसा वर्तन समझदार व्यक्ति कैसे कर सकता है ?

हमें प्राप्त ऊँची सामग्री का सदुपयोग करना चाहिये। पूर्व के पुण्योदय से प्राप्त सामग्री निष्फल न जाय इसके लिए बड़ी सावधानी जरूरी है। तिर्यंचों की तरह स्वच्छंद आहार-विहार में ही यह जिंदगी प्रसार हो जाय तो यह जीवन निष्फल ही माना जाएगा।

उपकारी महापुरुष फरमाते हैं– **'महापुण्योदय से जो सामग्री मिली हैं, उसका सदुपयोग करो।'** पुण्योदय से प्राप्त सामग्री के भोग में मोहित होकर पाप बढ़ाना, यह बुद्धिमान् के लिए शोभास्पद नहीं है।

समझदार मनुष्य वह हैं जो देव, नारक व तिर्यंच करने में असमर्थ हो, वह करके बताए।

देव भोग में डूबे हुए हैं, वे त्याग नहीं कर सकते हैं। देवों को भव ही ऐसा मिला है, जहाँ त्याग संभव नहीं है।

मनुष्य त्याग कर सकता है, विषय सुखों को लात मारकर संयम ले सकता है। **यह मनुष्य भव परमात्म पद की साधना के लिए है क्योंकि परमात्म-पद की उत्कृष्ट साधना मनुष्य ही कर सकता है।**

अपनी आत्मा को परमात्मा बनाना हो तो बहिरात्म-दशा छोड़

अंतरात्म-दशा प्राप्त करनी चाहिये । वर्तमान समय में हम शुद्धात्मा नहीं हैं । शुद्धात्मा बनने के लिए आत्मा पर लगे मैल को दूर करना चाहिये ।

बहिरात्म-दशा मैल बढ़ानेवाली है, जबकि अंतरात्म-दशा मैल धोनेवाली है । **आज मनुष्य इन्द्रिय सुखों के पीछे भाग रहा हैं, यह उसकी बहिरात्म दशा है ।**

आत्म-सुख प्रकट करने के लिए प्रयत्न करना अंतरात्म दशा है ।

आज पौद्‌गलिक सुख की भूख बढ़ गई है और आत्म-सुख की भूख घट रही है । आत्म-सुख की संपूर्ण प्राप्ति परमात्मा बनने पर होती है । जड़ के योग से सर्थथा मुक्त हुए बिना आत्म-सुख मिलनेवाला नहीं हैं ।

अतः जड़ संयोग को दूर करने में ही मानवजीवन की सार्थकता रही हुई है ।

सुदेव कौन? :–

अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए सुदेव, सुगुरू और सुधर्म का आलंबन लेना चाहिये । सुदेव, सुगुरू और सुधर्म की शरण स्वीकार करनेवाली आत्मा अंत में अवश्य परमात्म-पद प्राप्त करती है ।

जैसे-तैसे को देव मानने से मुक्ति का साध्य सिद्ध नहीं होगा । जिस देव के आलंबन से मुक्ति की साधना करनी हो वे देव स्वयं मुक्त न हो तो मुक्ति की प्राप्ति कैसे संभव है ? राग और द्वेष से ग्रस्त हो, उसे पूजने से वीतरागता कैसे प्राप्त होगी ?

भक्ति से तुष्ट होनेवाले, विरोधी ऊपर रुष्ट होनेवाले और कामिनी आदि का परिग्रह रखनेवाले सुदेव कैसे कहला सकते हैं ? देव तो वीतराग हो, स्वयं बुद्ध हो और निरुपाधिक होने चाहिये । मुमुक्षुओं के लिए वे ही आदर्श रूप हैं क्योंकि शुद्धात्मदशा पाने के लिए वैसा ही शुद्ध आलंबन चाहिये । परमात्मा किसी को मोक्ष देते नहीं हैं किंतु स्वयं मुक्तावस्था में होने के कारण मुमुक्षुओं के लिए ध्येयरूप हैं । उन तारकों ने मुक्त बनने का मार्ग बताया है, इस कारण वे मुक्ति-दाता भी कहलाते हैं ।

सुगुरु कौन? :–

वीतराग परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलने में प्रत्यक्ष सहायक सद्‌गुरु हैं । उनका भी आलंबन आवश्यक है । सद्‌गुरु वे ही कहलाते हैं जो

सुदेव की आज्ञा को समर्पित हो । सुदेव की आज्ञानुसार पाँच महाव्रतों को धारण कर निर्ग्रंथ रूप में विचरण करनेवाले हों और अपनी शक्ति अनुसार जगत् में एक मात्र मोक्ष मार्ग का प्रचार करनेवाले हो ।

हिंसा आदि पापों का सेवन करनेवाले, पापोपदेश देने वाले, धन आदि का परिग्रह रखनेवाले सद्गुरु नहीं कहला सकते ।

त्यागी का दिखावा हो किंतु अर्थ-काम की वासना बढ़ानेवाले हो, वे सद्गुरु नहीं कहलाते ।

सुधर्म क्या ? :–

इच्छानुसार मान लिये कार्य या कारण को सद्धर्म नहीं कहा जाता, लेकिन सुदेव निर्दिष्ट धर्म को सद्धर्म कहा जाता है । सद्धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ।

सम्यग्दर्शन अर्थात् वीतराग-परमात्मा निर्दिष्ट मोक्षमार्ग की श्रद्धा ।

'जड़ का योग ही दुःख का मूल है'– यह सम्यग्दृष्टि मानता है, इस कारण वह मनुष्यलोक और देवलोक के पौद्गलिक सुखों को भी तुच्छ मानकर उनकी इच्छा भी नहीं करता है ।

श्री वीतराग परमात्मा ने जड़ और चेतन का जो स्वरूप बताया है, उसका तथा चेतन को जड़ से मुक्त बनाने के मार्ग का ज्ञान, सम्यग्ज्ञान कहलाता है ।

सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान के होने मात्र से मुक्ति नहीं मिलती हैं, साथ में सम्यग्चारित्र भी चाहिये ।

सम्यक्चारित्र अर्थात् संसार का त्याग कर, आत्मा के मूल स्वभाव को प्रकट करानेवाले सद्नुष्ठानों का आचरण और उसके लिए देह की ममता का भी त्याग ।

देहरूपी पींजरे में आत्मा परतंत्र रही हुई है । जब तक देह का संयोग है, तब तक दुःख है । देह से रहित बनना ही मुक्त अवस्था है ।

देह के दुःख से आत्मा दुःखी नहीं होनी चाहिये तथा दैहिक सुख का लालच भी नहीं होना चाहिये ।

देह पर निःस्पृह भाव रखकर देह द्वारा आत्मकल्याण साधने का प्रयत्न करना । देह की ममता कम किये बिना सम्यग्चारित्र का पालन संभव नहीं है ।

`सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ही मोक्षमार्ग है ।' ऐसा अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा फरमाते हैं । जब आत्मा लघुकर्मी बनती है, तब आत्मा में सम्यग्दर्शन प्रगट होता है । सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान का योग रहा हुआ है । ज्ञानको सम्यग्ज्ञान बनानेवाला सम्यग्दर्शन है ।

यद्यपि सम्यक्चारित्र सरल नहीं है, फिर भी अभ्यासी के लिए कुछ भी असंभव नहीं है । प्रयत्न करोगे तो धीरे-धीरे सम्यक्चारित्र को पाकर मोक्ष में पहुँच सकोगे ।

प्रयत्नशील बनो :–

इस भव से प्रारंभ करो । सुदेव, सुगुरु और सुधर्म को पहचान कर उनके चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दो । मनुष्य जन्म का ध्येय समझो ।

आयुष्य कब पूरा हो जाएगा पता नहीं । सभी वृद्ध होने के बाद ही मरेंगे ऐसा नियम नहीं है ।

मौत आए और फिर पछताना पड़े इसके बजाय तो जीते जी जितना साध सके उसे साधने में प्रमाद नहीं करने में ही बुद्धिमत्ता है ।

`मनुष्य जन्म की सार्थकता किसमें है, यह हमें पता नहीं है ।' आज तक यह बात कह सकते थे, परंतु अब तो यह भी नहीं कह सकते ।

गतानुगतिक मूढ़ता में ही जीवन पसार करना हो तो आप जाने । परंतु ऐसा करने से शाश्वत सुख पाने की इच्छा पूर्ण होनेवाली नहीं है ।

आपको सुख बहुत पसंद है और दुःख लेश भी पसंद नहीं है, परंतु इतने मात्र से क्या हो सकता हैं ? उसका उपाय भी तो करना चाहिये । उपाय भी वास्तविक चाहिये ।

इन्द्रिय सुख के ही अर्थी बने रहोगे और अर्थ-काम की साधना में ही जिंदगी पूरी करोगे तो महापुण्य से प्राप्त यह जीवन व्यर्थ जाएगा ।

महापुरुषों द्वारा प्रशंसनीय मूल्यवान यह मनुष्य जीवन बर्बाद नहीं करना हो तो आत्मा को पहचानो । आत्म कल्याण के मार्ग का अभ्यास करो । आत्म-सुख के अर्थी बनकर शक्ति अनुसार त्याग और संयम को आत्मसात्कर आत्मस्वरूप प्रकट करने के लिए आत्मा को जड़ के योग से मुक्त करने के लिए प्रयत्नशील बनो । सच्चे कल्याण का यही मार्ग है । सभी इस मार्ग को पाकर अपना कल्याण करें, यही एक शुभाभिलाषा ।

10
मोह छोडो

नीरा **माघ शुक्ला 2, वि.सं. 1994,**
दि. 02-02-1938, बुधवार

यह आर्यदेश ! जहाँ आत्मा का विचार सतत चलता रहता था। आज आत्मा को लगभग भूला दिया गया है। देह के सुख की अत्यधिक चिंता है और आत्मा का विचार भी नहीं है। जो आत्मा परलोक में से इस देह में आयी है और यह देह छोड़कर परलोक में जानेवाली है, उसका विचार भी नहीं और जो देह यहाँ पड़ा रहनेवाला है, उसके सुख के लिए रात-दिन मेहनत ! यह कैसी दशा ? आत्मा अमर है या देह ?

आत्मा अमर है और देह नाशवंत है। फिर भी नाशवंत के पागलपन में आत्मा का क्या होगा, यह चिंता ही भुला दी गई है। अपना क्या और पराया क्या ? ऐसा विचार ही कहां है ? जो अपना है उसे और जो पराया है उसे वास्तविक रूप से समझनेवाला पराये के मोह में अपना आत्म-हित का नाश करे, यह कहाँ तक उचित है ? पराये का आकर्षण बढ़ जाय या निरुपाय से आत्म-हित का हनन हो, इस परिस्थिति में भी दुःख हुए बिना न रहे।

सच तो यह है कि आपको अपना क्या और पराया क्या, उसका भान ही नहीं है। जो पराया है उसे अपना मानकर भान भूले हैं। इस कारण चौबीस घंटे दुन्यवी कार्यों में लगे रहे हो। आत्मा अपनी होने पर भी उसकी लेश भी चिंता नहीं है।

धन कमाने के लिए अपनी जन्मभूमि छोड़कर यहाँ आए, परंतु आत्म-शुद्धि के लिए एक बार भी अपना घर छोड़कर कहीं गए ?

दैहिक सुख आपको पसंद है, इसलिए आप सोचते हो– **'गाँव में घर चाहिये, घर में रसोड़ा चाहिये, दुकान चाहिये, स्कूल चाहिये, अस्पताल चाहिये। परंतु आत्मा के लिए जिनमंदिर, उपाश्रय, पाठशाला आदि चाहिये– ऐसा आपको लगता है ?'**

बाहर से आकर यहाँ घर किया, पेढ़ी खोली परंतु हम श्री वीतराग परमात्मा के दर्शन-पूजन से वंचित रह जाते हैं। अतः छोटा भी श्री जिनमंदिर बांधे ऐसा विचार किया ?

आप लोग जैन कुल में जन्मे हों इस बात को छोड़ देंगे तो 'आप जैन हो' यह सिद्ध करने के लिए आपके पास क्या साधन है ?

वास्तविक देव, गुरु और धर्म को आप पहचानते हो ?

फुरसत तो है लेकिन इच्छा नहीं है :–

आज कई लोग कहते हैं देव, गुरु और धर्म का विचार करने के लिए हमारे पास समय नहीं है– परंतु यह बात गलत हैं। दंभ छोड़कर कहो कि देव, गुरु और धर्म का विचार करने के लिए समय नहीं है या इच्छा नहीं है ?

दिन में गप्पे लगाने में, पराई पंचायत करने में तथा अनावश्यक बातों में कितना समय निकालते हो ? अनावश्यक बातों में जो समय चला जाता है, उसका आधा भी समय इस विचार के लिए निकालने के लिए तैयार हो ?

'आत्मा-आत्मा' सिर्फ बोलते हो या हृदय से मानते हो। यदि आत्मा को मानते हो तो अपनी यह दुर्दशा होती क्या ?

जैन अर्थात् आत्मा के कल्याण के लिए कुदेव, कुगुरु और कुधर्म को छोड़ सुदेव, सुगुरु और सुधर्म को भजनेवाला। परंतु आज तो सब कुछ चलता है, क्योंकि आत्मा का विचार ही नष्ट हो गया है।

देव-गुरु और धर्म का स्वरूप ही ख्याल में नहीं है। स्वार्थ के लिए जिस-किसी देव की पूजा कर लेते है। जैसे-तैसे वेषधारी को भी गुरु मान लिया जाता है और कुलाचारों के पालन में ही धर्म मान लिया है।

भोजन अच्छा चाहिये, स्कूल में मास्टर अच्छा चाहिये शरीर के लिए डॉक्टर अच्छा चाहिये, पेढ़ी पर मुनिम अच्छा चाहिये, हर चीज

अच्छी चाहिये उसके लिए मेहनत भी करते हो और चिंता भी होती है, परंतु गुरु जैसे-तैसे हो तो भी चलेगा ।

ऐसा क्यों ? इतना अज्ञान होने पर भी आज समता का ढोंग किया जाता है, हमारे लिए तो सभी देव समान, सभी गुरु समान और सभी धर्म एक समान, ऐसा बोलते हैं ।

देव, गुरू और धर्म को छोड़ अन्य कहीं भी समानता की बातें नहीं होती क्योंकि अन्यत्र अच्छे परिणाम की अपेक्षा रही हुई है और देव, गुरू, धर्म की तो कुछ भी गरज नहीं है ।

आत्महित का हनन न करो :–

रूढिवश आप लोग साधुओं का स्वागत सत्कार करते हो, इतने मात्र से आप लोग सुगुरु के पूजक हो ऐसा नहीं मान सकते हैं ।

सुगुरू को माननेवाले सुदेव और सुधर्म को भी मानता है । कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का त्यागी भी होता है । यह तभी संभव है जब परायी चिंता छोड़कर आत्म-चिंता करनेवाले बनोगे ।

'स्व' और **'पर'** दोनों को पहचानों । आत्मा को पहचानों । देह सुख और इन्द्रिय-सुख की वासना के पोषण के लिए आत्महित का हनन मत करों । इन्द्रियों पर नियंत्रण रखो ।

धन और दुन्यवी सुख को पाने के लिए आप इन्द्रिय-संयम रखते ही हो, परंतु वैसा न कर आत्म-गुणों को प्रकट करने के लिए इन्द्रिय-निग्रह करों ।

जिसके योग से आत्मा संसार में भटकती रही है, उसी पौद्‌गलिक भोग में आप सुख की कल्पना कर रहे हो और अनंतज्ञानियों ने जिसे दुःख का मूल कहा है, उसी पौद्‌गलिक योग में आप सुख मान बैठे हो तो फिर ज्ञानियों के साथ आपका मेल कैसे होगा ?

आत्मा का कल्याण करना हो तो अपनी झूठी मान्यता को बदलो । ज्ञानियों ने जो स्वरूप बताया है, उसका अभ्यास करो और ज्ञानियों की आज्ञानुसार आचरण करने के लिए प्रयत्नशील बनो । इससे आपकी आत्मा का कल्याण होगा और क्रमशः शाश्वत सुख का धाम **'मोक्ष'** प्राप्त कर सकोगे ।

11

धर्म की आवश्यकता

लोणंद **माघ शुक्ला 4, वि.सं. 1994,**
दि. 04-02-1938, बुधवार

अनंत उपकारी, अनंतज्ञानी जिनेश्वर भगवंत फरमाते हैं कि दुर्लभ ऐसे मानव जन्म को प्राप्त कर, यदि आप कल्याण चाहते हैं तो विषयोपभोग में जीवन को बर्बाद न कर धर्म की आराधना करनी चाहिये ।

मुक्ति की साधना के लिए मानव भव श्रेष्ठ भव है । मुक्ति की साधना का हेतु न हो तो इस भव की महत्ता की कोई कीमत नहीं है । देवगति में अमाप भोग सामग्री है फिर भी ज्ञानियों ने मनुष्य भव को उत्तम कहा । क्योंकि देवता बलवान होने पर भी भोग का त्याग कर मुक्ति मार्ग की आराधना नहीं कर सकते हैं । **भोग का त्याग और उत्कृष्ट संयम का पालन मनुष्य भव में ही संभव है । इतना होने पर भी आज मनुष्य भोग का अर्थी बनकर मुक्ति के ध्येय को भूल गया है । इस कारण भोग का त्याग व संयम का सेवन करने की सलाह रुचिकर नहीं लगती है ।**

धन-दौलत तथा इन्द्रिय-सुख की आवश्यकता लगती है लेकिन देव-गुरू और धर्म की आवश्यकता नहीं लगती ।

मनुष्य अपनी बुद्धि का सदुपयोग करे तो श्रेष्ठ कोटि की साधना भी कर सकता है और बुद्धि का दुरुपयोग करे तो इस श्रेष्ठ भव में भी ऐसे पाप कर सकता हैं, जिसके फल स्वरूप उसे आगामी भव में नरक की भयंकर यातनाएँ सहन करनी पड़ सकती हैं ।

इतना होने पर भी **'मैं कहाँ से आया हूँ ? मुझे कहाँ जाना है ? मैं कौन हूँ ? मेरा कर्तव्य क्या है ? इत्यादि सोचने के लिए समय ही कहाँ है ?'**

केवल धन-दौलत व इन्द्रिय सुखों की चिंता है, इसके लिए ही बुद्धि और शक्ति का व्यय होता है । लगभग पूरा समय इसी में बीत जाता है । धन-दौलत और इन्द्रिय सुख मिल जाय तो कई लोगों को देव-गुरु और धर्म की भी जरूरत नहीं है । देव-गुरु और धर्म की भी इन्द्रिय सुख पाने के लिए सेवा करते हैं ।

दुन्यवी लोग व्यापार आदि के लिए श्रम करते हैं, उसी प्रकार देव-गुरू धर्म की सेवा के लिए श्रम करते हैं । दोनों के परिश्रम के मार्ग भले ही अलग हो, दोनों का ध्येय तो एक ही है । उस ध्येय को बदलने की आवश्यकता है ।

मुझे धन-दौलत और इन्द्रिय सुख नहीं, बल्कि मुक्ति ही चाहिये । यह ध्येय निश्चित हो जाय तो ज्ञानी की आज्ञानुसार देव-गुरु-धर्म की सेवा का परिश्रम सफल हो सकता है ।

धर्म के अभाव का दुःख है ?

परंतु आपको मुक्ति की इच्छा कहाँ है ? **'मुझे मुक्ति ही चाहिये ?'** ऐसी इच्छा होती है ? **मुक्ति की इच्छा जगे तो भोगों के प्रति अरूचि और त्याग के प्रति रूचि पैदा हो ।**

अपनी आत्मा क्यों दुःखी हो रही है, यह जानते हो ? जैनकुल में जन्म पाये हो लेकिन जैनत्व क्या चीज हैं यह आप जानते हो ? कहते हैं कि महाराष्ट्र में बहुत ही अज्ञान है, साधु भगवंत के आगमन से वह दूर होगा । लेकिन साधु के पास जाकर कभी विज्ञप्ति की ? साधु कभी विज्ञप्ति के भूखे नहीं होते । ऐसा भी नहीं होता कि साधु आपकी विज्ञप्ति से ही आ ही जाय !

साधु भगवंत तो संयम की रक्षा करते हुए भगवंत की आज्ञानुसार विचरते हैं । लेकिन आपका कर्तव्य है कि विज्ञप्ति करना । मैं पूछता हूँ कि– साधु की निश्रा में जाकर वहाँ रुककर कितना धर्म किया ? धर्म की आवश्यकता होती तो यह संभव होता । पैसे जरूरी लगते हैं तो आदमी कहाँ-कहाँ जाता है ? उसी प्रकार आपको धर्म जरूरी लगता हो तो जिस स्थान से धर्म की प्राप्ति हो सकती हो, वहाँ गये बिना नहीं रहते । परंतु वास्तविकता तो यह है कि **मनुष्य को दरिद्रता का दुःख खटकता है, किंतु धर्महीनता खटकती नहीं है ।**

माता-पिता ने अपने बच्चों को व्यावहारिक शिक्षण नहीं दिया हो तो वे बच्चे बड़े होकर माता-पिता को दोष देते हैं और दुनिया भी उन माँ-बाप को ठपका दिए बिना नहीं रहती हैं । परंतु माता-पिता ने अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षण नहीं दिया हो तो उन माँ-बाप को दोष देनेवाले कितने ?

कोई यह पूछता नहीं है कि आप अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षण क्यों नहीं देते हो ? इसका एक ही कारण है कि आपको धर्म की जरूरत नहीं है ।

धर्म की जरूरत लगती तो धर्मशिक्षण पाने के लिए योग्य स्थल पर पहुँचे बिना नहीं रहते ।

आज तो धर्म की जरूरत नहीं लगती है फिर भी धर्मी कहलाने का मोह है । धर्मी कहलाने का मोह छोड़कर धर्मी बनने का प्रयत्न करोगे तो कल्याण होगा ।

सुवर्ण पात्र में शराब :–

धर्म की अनिवार्यता लगती हो तो साधुओं का योग फलता है साधु आए तब सामैया ले आते हो और उन्हें विदाई देने भी चले जाते हो, परंतु इतने मात्र से क्या ?

सुसाधुता का राग पैदा होना चाहिये । साधुओं को गाँव में लाकर अपना कौन-सा हेतु सिद्ध करना है ? यहाँ आने के बाद भी आपको कौन सा हेतु सिद्ध करना है ? यहाँ आने के बाद भी आपने कितने साधुओं को आत्मा की बात पूछी ? हमारी आत्मा के कल्याण का मार्ग बताओ यह कितने को कहा ?

साधु व्याख्यान देते हैं तब **''हाँजी''** करते हो, परंतु क्या कहा ? क्यों कहा ? क्या छोड़ने को कहा ? इत्यादि विचार न करो तो क्या होगा ?

'हाँ जी' कहते हो तो समझकर हाँ कहो, समझकर **'हाँ'** कहोगे तो आचरण में लाने का प्रयत्न कर सकोगे । सिर्फ हमें खुश करने के लिए **'हाँ जी'** मत कहो । परंतु ठीक लगता हो तो **'हाँ'** भरो । समझ में नहीं आए तो वापस पूछो और समझ में आने के बाद उसे आचरण में लाने का प्रयास करो ।

अनंतकाल से संसार में भटकती हुई अपनी आत्मा को मोक्ष में पहुँचाने का ध्येय निश्चित करो । मोक्ष के लिए भोग का त्याग और सत्प्रवृत्ति जरूरी है ।

मनुष्य भव में ही भोग का त्याग और संयम की सत्प्रवृत्ति संभव है । इसी कारण अन्य भवों से मानवभव श्रेष्ठ हैं । आपको दुर्लभ ऐसा मानव भव मिल गया है तो उस भव को कैसे आचार-विचार में पसार करते हो ?

त्याग के साधन का भोग के लिए उपयोग करना यह तो सुवर्णपात्र में शराब भरने जैसा है ।

वीतराग प्रति सच्चा राग :–

जब तक संसार के भोगों में सुख दिखाई देगा तब तक आप सुदेव, सुगुरु और सुधर्म के सच्चे सेवक बनने वाले नहीं हों ।

'धन-दौलत और भोग सामग्री के योग से सुख मिलता है ।' जब तक यह मान्यता होगी, तब तक वीतरागता पसंद नहीं पड़ेगी ।

'धन-दौलत और भोग सामग्री में सुख माननेवाला देव, गुरु आदि की पूजा करेगा तो भी उसकी इच्छा जड़ सुखों को प्राप्त करने की ही रहेगी । **संसार प्रति अरुचि पैदा हुए बिना श्री वीतराग के प्रति सच्चा प्रेम प्रकट नहीं होगा । संसार पर अरुचि होगी तभी सुसाधु पर प्रेम प्रकट होगा ।**

धर्म की रुचि जगेगी तभी सुसाधु की शोध होगी । इसके सिवाय अपनी रूढ़ि के कारण कुसाधुओं को ही पूजोगे ।

आप सच्ची साधुता के अर्थी बनोगे तो कुसाधु तुम्हें ठग नहीं सकेंगे ।

आप धर्मी बनोगे तो आपके कुटुंब में भी कोई साधु बन सकेगा । साधु नहीं बनेगा तो कम से कम आदर्श सद्गृहस्थ बन सकोगे । यदि ऐसा होगा तो आपको प्राप्त उत्तम सामग्री की प्राप्ति सफल मानी जाएगी ।

मनुष्य भव को सफल करना हो तो यह बात हृदय में स्थिर करनी होगी कि मोक्ष के ही ध्येय से अनंत उपकारी जिनेश्वर निर्दिष्ट धर्म की आराधना करनी चाहिये ।

संसार के त्यागपूर्वक संयम जीवन में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है ।

सर्वविरति और देशविरति

सभा में से– **'क्या घर में रहकर धर्म नहीं कर सकते है ?'**

पूज्यपादश्री– यहाँ उत्कृष्ट धर्म की बात चल रही है । घर में रहकर बिल्कुल धर्म नहीं हो सकता है, ऐसी बात नहीं है । परंतु जो संपूर्ण त्याग कर सकता हो, वह घर में रहे ही क्यों ?

पंच महाव्रतधारी साधु सर्वविरति धर्म का और पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रत रूप बारह व्रत अथवा कुछ न्यूनाधिक व्रत पालनेवाले श्रावक देशविरति धर्म का पालन करते हैं ।

'विरति ही धर्म है' यह बात निश्चित हो जाती है । जो सर्व से विरति धर्म को स्वीकार करते हैं, उनका धर्म उच्च कोटि का गिना जाता है । ध्येय तो उच्च कोटि के धर्मी बनने का ही रखना चाहिये । सर्व से विरति संभव न हो तो **'देश से विरति'** स्वीकार करे, परंतु शक्ति हो तब तो सर्व से ही विरति का स्वीकार करना चाहिये ।

गृहस्थ जीवन में रहकर जो जितना धर्म करता है, उतना उसे लाभ होता है, परंतु शेष अविरति के कारण नुकसान होगा या नहीं ?

अविरति आश्रव का कारण है और विरति संवर तथा तप आदि के योग से निर्जरा का भी कारण है । इससे सिद्ध होता है कि जीवन में जितनी विरति होगी, उतना ज्यादा कल्याण होगा ।

कदाचित् साधु न बन सको तो भी गृहस्थ जीवन में रहकर शक्य धर्म तो करना ही चाहिये, वह कब हो सकता है ? जब मोक्ष की इच्छा और संसार प्रति अरुचि पैदा होगी ।

परंतु आज यही तकलीफ है । जिनेश्वर देव जिसे सुख का कारण कहते हैं, उसे आप दुःख का कारण मानते हो और जिनेश्वर देव जिसे दुःख का कारण मानते हैं, उसे आप सुख का कारण मानते हो ।

अभी तक तो सम्यक्त्व का ही ठिकाना नहीं है, इसी कारण सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पसंद नहीं है । सम्यग्दर्शन आए तो सुदेव, सुगुरू और सुधर्म पसंद आएँगे ।

मोक्ष की अभिलाषा जगे तो धर्म की जरूरत लगे । जब तक आपको धर्म की जरूरत नहीं लगेगी तब तक आप देव-गुरू और धर्म को वास्तविक रूप से पहचान नहीं सकोगे ।

कितने ही वृद्धों ने खूब बिगाड़ा है । वे स्वयं धर्म नहीं करते हैं और अपने आश्रितों को भी धर्म आराधना में नहीं जोड़ते हैं । साधुओं के उपदेश का असर हुआ हो तो वे वृद्ध उसे साफ कर देते हैं । वे कहते हैं– **'साधु कहते हैं, वह ठीक है, किंतु हमें वैसा करना शक्य नहीं है । साधु कहे वैसा करे तो भीख मांगनी पड़ेगी ।'** इस प्रकार वृद्ध भ्रमित करते हैं । अपनी होशियारी से लक्ष्मी मिलती है, वैसा वे मानते हैं ।

'पौद्गलिक भोग सामग्री पुण्य बिना नहीं मिलती है' ऐसा वे नहीं मानते हैं क्योंकि वे अज्ञान से घिरे हुए हैं । वृद्ध सुधर जाय तो घर में सुधार होने लगेगा ।

याद रखें, पुण्य के योग से अल्प मेहनत में लखपति बने हुए और पाप के योग से होशियार होने पर भी लखपति में से भिखारी बननेवाले इस जगत् में कम नहीं हैं ।

उपेक्षा न करे :–

ज्ञानी भगवंत तो पुण्य से प्राप्त सामग्री का भी मोक्ष की साधना में सदुपयोग करने को फरमाते हैं । पुण्य योग से प्राप्त सुख-वैभव को छोड़कर आत्मसुख के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिये ।

आप यदि धन-दौलत हेय मानते हो तो लोणंद में श्री जिनमंदिर और उपाश्रय नहीं है यह कैसे बन सकता है ? उपाश्रय से धर्मक्रिया साधने को अनुकूलता होती है और श्री जिनमंदिर से जैनत्व के संस्कार टिकते हैं । इस बात की आप उपेक्षा करोगे तो आपकी प्रजा बिल्कुल अज्ञानी रहेगी और निर्ग्रंथ मुनिवर गाँव में आएँगे तो भी पहचान नहीं सकेगी ।

यदि आप अपना और अपनी प्रजा का कल्याण चाहते हो, धर्म संस्कारों को जीवंत रखनेवाले और धर्म साधना के लिए आवश्यक साधन इकट्ठे करने चाहिये । परंतु यह तभी हो सकेगा जब आपको धर्म अनिवार्य लगेगा ।

धर्म अनिवार्य लगेगा तो आपका कल्याण निश्चित है, बाकी तो जैसी भवितव्यता होगी, वैसा होगा ।

12

सच्चे जैन बनो

देउर **माघ शुक्ला 5, वि.सं. 1994,**
दि. 05-02-1938, शनिवार

अनंतज्ञानी, अनंतउपकारी जिनेश्वर देव फरमाते हैं कि इस आत्मा को मनुष्य भव की प्राप्ति अति दुर्लभ है । महान पुण्योदय से ही आत्मा को मनुष्य भव की प्राप्ति होती हैं । मनुष्य भव में भी अनुकूल सामग्री पुण्य योग से ही मिलती है । दुनिया में अनेक जीवों को अनिच्छा से भी दुःख भुगतना पडता हैं । आप पुण्यशाली हो कि आपको मनुष्यभव मिला है, उसके साथ ही आर्यदेश और आर्यकुल में जन्म हुआ है । आप चाहो तो उत्तम प्रकार से धर्म आराधना कर सकते हो, ऐसी उत्तम सामग्री मिली है ।

भीख माँगने पर भी कई लोगों का पेट भरता नहीं है जबकि आपके पास खाने-पीने के बाद भी कितना बच जाता है । आप सभी पुण्यशाली हो, फिर भी **'जीवन में क्या कर्त्तव्य है, क्या अकर्त्तव्य है ?'** इसका विचार भी नहीं करते हो, क्या यह खेद की बात नहीं है ?

परभव का विचार करो :–

पूर्व के पुण्योदय से इस भव में यह सब प्राप्त हुआ है, परंतु आगामी भव में क्या होगा ? इसका भी ख्याल करना चाहिये । अपनी पूंजी मोज-शोख में गंवाकर कर्ज करनेवाला समझदार कहलाता है या मूर्ख ? पूर्व का पुण्य समाप्त होगा और पाप उदय में आएगा तब क्या हालत होगी ? उसका विचार करो ।

परभव का विचार आए तो धर्म को जानने और आचरण में लाने की बुद्धि प्रकट होगी । धर्म को समझ ले तो आपकी स्थिति बदल जाय । आज

जो इच्छाएँ और प्रवृत्ति चल रही हैं, उसमें परिवर्तन आए बिना न रहेगा, क्योंकि धर्म नवीन ही शिक्षण देता है ।

धर्म अपनी आत्मा का भान कराता है । **'मैं कौन ? मेरा क्या ? और जो मेरा है, उसे प्रकट करने का उपाय क्या ?'** यह सब भान धर्म कराता है । हम जड़ नहीं, लेकिन चेतन हैं । फिर भी आज चेतन, जड़ का गुलाम बना हुआ है । जड़ के योग में ही चेतन नाच रहा है । इच्छित जड़ के वियोग में चेतन दुःखी हो रहा है और इच्छित जड़ के योग में खुश हो रहा है।

'अनुकूल जड़ पदार्थ कैसे मिले ? उनका भोग कैसे हो ? उनका रक्षण कैसे हो ? रात-दिन ये ही विचार चलते हैं । जड़ की गुलामी से चेतन को मुक्त करानेवाला धर्म है ।'

'जड़ के योग से चेतन दुःखी हो रहा है' अतः जड़ का योग दूर करना चाहिये– यह बात धर्म सीखाता है । **'जड़ के योग से आत्मा कैसे छूटे'** यह भी धर्म सीखाता है । धर्म तो वचन देता है कि **'मेरा सेवन करनेवाली आत्मा जड़ के अनादिकालीन योग से मुक्त बनती है और शाश्वत सुख प्राप्त करती है ।'**

इस भव में धर्म की सर्वश्रेष्ठ आराधना हो सकती है, इसलिए यह भव कीमती माना गया है । परंतु आपको तो धर्म की आवश्यकता ही कहां है ?

'देव कौन ? गुरु कौन ? धर्म क्या ? पुण्य-पाप का स्वरूप क्या ? धर्म के सेवन की आवश्यकता क्यों ?' इन सभी बातों पर कभी विचार किया है ? आपको तो सिर्फ एक ही विचार है– **'दुनिया के सुख कैसे मिले ? कैसे टिके ? और उनका भोग कैसे हो ?' व्यापार-धंधे में ग्राहक को ठगने में होशियार बने हो, किंतु धर्म के विषय में बिल्कुल अज्ञात हो, क्योंकि आपको धर्म की आवश्यकता नहीं है ।'**

अभी वर्तमान में जिन पापों का आचरण कर रहे हो, भविष्य में उसका फल भुगतना पड़ेगा क्या इस बात में आपको श्रद्धा है ? जानबूझकर निर्दयी बनकर पाप करोगे तो सजा बढ़ेगी या घटेगी ?

कदाचित् पाप करना पड़े तो भी कंपित हृदय से करना चाहिये,

इसके बजाय रसपूर्वक किया जाय अथवा **'क्या पता पाप का फल मिलता होगा या नहीं ?'** ऐसी अश्रद्धा से किया जाय तो थोड़ा भी पाप भयंकर ही बनता है ।

धर्म से नहीं, पाप से डरो :–

पूर्व के पुण्योदय से इस जीवन में आप सुखी हैं । परंतु पूर्व का पुण्य इस जीवन में सुख देता है, उसी तरह इस भव का पाप अगले जन्म में अवश्य दुःख देगा ।

अपने जीवन के आचारों के आधार पर अपने आगामी भव की कल्पना करके देखो ! इस जीवन में मन, वचन और काया से कितने पाप किए ? और धर्म का सेवन कितना किया ? थोड़ा बहुत धर्म किया तो भी किस लक्ष्य के साथ ?

मनुष्य के हृदय में धर्म बसा है या नहीं, इसे जानने का एक उपाय है । **हृदय में धर्म बसा हो तो व्यक्ति पाप से डरता है और अपनी आत्मा को जड़ के योग से मुक्त करने का लक्ष्य रखता है । इस ध्येय से ही वह शक्य धर्म का आचरण करता है ।**

आप जो कुछ धर्म करते हो, उसमें लक्ष्य क्या ? मुक्ति का लक्ष्य या पाप-लक्ष्य । पाप-लक्ष्य अर्थात् दुन्यवी स्वार्थ का लक्ष्य !

सभा में से–'हम तो अज्ञानी हैं ।'

पूज्यपादश्री :– आप अज्ञानी रहे हो क्योंकि आपको धर्म की गरज नहीं है । लोक-व्यवहार में कितने होशियार हो, यह ख्याल आ जाता है । यदि आपको धर्म की जरूरत लगती तो धर्म को जानने के लिए प्रयत्न किए बिना नहीं रहते ।

पाप के योग से दुःख आता है, क्या आप यह नहीं जानते हो ? यदि जानते हो तो पाप-त्याग में उत्साह क्यों नहीं आता ? पाप करते हुए हृदय में डंक क्यों नहीं लगता ?

धर्म समझे हो तो आपको लगता कि धर्म तो दुनिया के भोगों के त्याग की बात करता है । क्या ये बातें आप नहीं जानते हो ?

अज्ञानी रह जाओ तो भी पाप की सजा में से छूटनेवाले नहीं है ।

धर्म में अज्ञान रहोगे तो पाप लगनेवाला ही है ! पाप किया तो उसकी सजा भुगतनी ही पड़ेगी ।

ज्ञानी बनने का प्रयत्न कर धर्म को समझने की कोशिश करोगे तो पाप करते हुए हृदय में दुःख होगा और पाप के बाद भी पश्चात्ताप होगा । इससे पाप के बंध में फर्क पड़ जाएगा ।

जीवन में धर्म आएगा तो दुन्यवी सुख मिलने पर अभिमान नहीं आएगा और दुन्यवी सुख चले जाने पर दीनता नहीं आएगी ।

दुन्यवी अनुकूल सुख सामग्री मिलने पर **'यह पुण्य का फल है'** तथा अनुकूल सुख-सामग्री चले जाने पर **'यह पाप का फल है'** ऐसा ख्याल रहेगा । इससे आत्मा दुन्यवी सुख में मदांध और दुःख में पामर न बनकर विरागी और समाधि वाली रहेगी ।

'आत्म-सुख की इच्छा, पाप का डर और धर्म का अर्थीपना' ये तीनों की आवश्यकता :–

जीवन में धर्म आएगा तो आत्मा के उद्धार का विचार आएगा, अतः मुक्ति के लक्ष्य से धर्म का सेवन होगा । वह धर्म आपके परलोक को सुधारेगा और मुक्ति-सुख का भोक्ता बनाएगा ।

धर्म को न समझकर पाप में रत रहोगे तो आपकी आत्मा अधिक दुःखी होगी **'अतः पाप-भीरु बनकर धर्म के अर्थी बनो ।'**

पाप का भय नहीं होगा तो अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए व्यक्ति दूसरे के दुःख का विचार नहीं करेगा ।

'मेरा आगामी भव बिगड़े नहीं, इसलिए आत्म-कल्याण के लिए मुझे क्या करना चाहिये ?' ये बातें कभी किसी ज्ञानी को मिलकर पूछी हैं ?

आज की हालत खराब है । सद्गुरु मिल जाए तो भी दुन्यवी सुख प्राप्ति के आशीर्वाद पाने की इच्छा होती है । भगवान के पास जाकर भी दुन्यवी वैभव की इच्छा करते हो ।

आज पाप का डर नहीं है, धर्म की जिज्ञासा नहीं है । दुःख के कारणभूत भोगों को ही पाने की तीव्र इच्छा है ।

दुन्यवी सुख के बजाय आत्म-सुख पाने की इच्छा होगी, पाप का भय लगेगा और धर्म के अर्थी बनोगे तभी अनंतज्ञानी द्वारा निर्दिष्ट मुक्तिसाधक धर्म का वास्तविक सेवन हो सकता है ।

सामग्री का उपयोग करो :–

धर्म-गुरू आपको धर्म की आराधना का उपाय बताते हैं, परंतु आचरण तो आपको ही करना है न !

सभा में से – करेंगे ।

पूज्यश्री – बोलना सरल है किंतु आचरण करना कठिन है ।

सभा में से – थोडा-बहुत आचरण करते हैं ।

पूज्यश्री– **'जो कुछ आचरण करते हो वह किस ध्येय से करते हो, यह तो देखना पड़ेगा न !'**

पाप नहीं करते हो तो पाप के भय से नहीं करते हो या अन्य किसी भय में और जो कुछ धर्म करते हो वह संसार से छूटने के ध्येय से करते हो न ?

उपकारी तो फरमाते हैं कि **मोक्ष के ध्येय से धर्म का आचरण करना चाहिये । पाप का त्याग भी मोक्ष के ध्येय से करना चाहिये ।**

आपके दिल में मोक्ष की रुचि जगी है ?

मोक्ष की अभिलाषा से जिन पूजा भी करते हो तो भी काफी फर्क पड़ जाएगा ।

इस गाँव में जिनमंदिर है, लेकिन पूजा करनेवाले कितने ?

सभा में से– 'पांच-छह लोग'

पूज्यपादश्री– नब्बे लोगो में से सिर्फ पांच-छह लोग पूजा करनेवाले ? जिनमंदिर होने पर भी सिर्फ इतने ही लोग पूजा करनेवाले ? इसका कारण क्या ? आप लोग धर्म से वंचित हो इसका कारण साधु के आगमन का अभाव हैं या आपको धर्म की जरूरत नहीं है, यह है ?

सामग्री होने पर भी उसका उपयोग नहीं करते हो, क्या यह विचारणीय नहीं है ? नब्बे में से 5-6 लोग प्रभु को पूजनेवाले तो साधु को सुननेवाले कितने ?

सुसाधु का योग मिलने पर भी योग्य आत्माएँ ही धर्म पा सकती हैं ।

'साधु के विचरण से लाभ होता है किन्तु वह लाभ उसी को होता है, जिन्हें साधु की जरूरत लगती हैं ।'

बेकार बैठे हो तो गप्पे लगाने, मौजशौक के लिए दिन में तीन बार भी स्नान करे और पूजा की बात आए तब **'समय नहीं है'–** कहकर बहाना निकालते है, क्या यह उचित है ?

श्रावक को तो नियमित विधिपूर्वक जिनपूजा करनी चाहिये । क्या यह आपको पता नहीं है ?

शुद्ध मन से मोक्ष के ध्येय से वीतरागता पाने के लिए वीतराग परमात्मा की पूजा करोगे तो कभी न कभी अपनी आत्म-दशा का भान होगा और पाप से बचकर धर्म-सेवन की भावना जगेगी ।

नूतन वर्ष के मंगल प्रभात में सभी पूजा करते होंगे लेकिन किस ध्येय से ? मेरा वर्ष आनंदमय व्यतीत हो इसी ध्येय से न !

'मेरी पापबुद्धि दूर हो' इस ध्येय से पूजा करनेवाले कितने ?

जानबूझकर अज्ञानी मत बनो ! पापाचरण से पैसा मिलता है, ऐसा न मानों ।

पापाचरण से पैसे मिलते होते तो लुटेरे आदि ही धनवान होते ।

पूर्व के पुण्योदय से ही पैसे मिलते हैं । पाप का सेवन करने पर भी पूर्व के पुण्य का योग नहीं होता तो पैसे नहीं मिलते ।

पाप-सेवन के बाद पूर्व के पुण्य-योग से लक्ष्मी मिल गई, परंतु उसके बाद क्या ? लक्ष्मी पाने के लिए पाप, लक्ष्मी के संरक्षण में पाप और उसके भोग में भी पाप ! इसका परिणाम क्या ?

ज्ञानियों की दृष्टि से वस्तु का विचार करो । ज्ञानी जो फरमाते है उसका अभ्यास करो और आचरण में लाने के लिए प्रयत्न करो ।

साधुओं ने जीते जी मोह छोड़ दिया और आपको भी मरते समय अनिच्छा से छोड़ना पड़ेगा । उस समय ज्यादा मोह रखनेवाले को ज्यादा परेशानी होगी ।

कई बादशाह मर गए और उनका राज्य यहीं रह गया । कई

बादशाहों को जीते जी गद्दी भी छोड़नी पड़ी । अपनी आँखों के सामने यह दृश्य देखते हुए भी गाफिल क्यों होते हो ?

मौत आएगी और यह सब कुछ यहां छोड़कर चले जाना पड़ेगा । कितना भी रुदन करोगे तो भी उसमें से कुछ भी साथ चलनेवाला नहीं है, अतः धर्म को साथी बनाओ । वह पुण्योदय और पापोदय दोनों में मोहित नहीं होने देगा और धीरे-धीरे आत्मा कर्म-मात्र से मुक्त बनें, ऐसे रास्ते पर ले जायेगा।

इस जगत् में धर्म के समान अन्य कोई साथीदार नहीं है । पाप-पुण्य तो साथ में हैं ही । धर्म साथीदार को प्राप्त कर उसे पुण्य-पाप का नियामक बना दो ।

धर्म को नियामक बनाओगे तो पाप तथा खराब पुण्य भागने लगेगा और अच्छा पुण्य तो मुक्ति की साधना में प्रतिबंधक नहीं, लेकिन साधक बनेगा ।

पाप का त्याग कर धर्म को साथी बनाओ । यह संपूर्णतया संभव न हो तो बड़े पापों का त्याग और अल्प प्रमाण में भी धर्म को साथी बनाकर उसका आदर करो । यह तो संभव हैं न !

सभा में से– `मैंने व्रत लिये हैं ।'

पूज्यपादश्री– `तो आगे बढ़ो । शक्ति हो और उल्लास बढ़ता हो तो देशविरति में से सर्वविरति का स्वीकार करो और योग्यता प्राप्त कर विरति-धर्म का उपदेश देने लगो ।'

सभा में से– कोई नहीं सुनेगा ।

पूज्यपादश्री– अभी तो सुनते हैं न ! आप योग्य बनोगे तो जो भी उत्तम होगा, वह अवश्य सुनेगा ।

सभा में से– आपका सुना हुआ भी घर जाते-जाते भूल जाएंगे ।

पूज्यपादश्रीः– इसकी चिंता न करे । हम अपने धर्म का पालन बराबर करते हैं या नहीं ? यही पहले देखने का है ।

जिनेश्वर देव की आज्ञानुसार स्व-पर कल्याण-बुद्धि से कहने से अपनी आत्मा को तो अवश्य लाभ होता है । भले ही सामनेवाले को लाभ हो या न हो ।

'पाप सेवन में बुद्धिमत्ता नहीं हैं ।' 'पाप किए बिना पेट नहीं भरता है !' यह मान्यता भी गलत है । पुण्य हो तो पाप किए बिना भी धन मिल सकता है और पुण्य न हो तो पाप करने पर भी मिलनेवाला नहीं है । आज पेट के नाम पर कितने पाप हो रहे हैं ?

आज जो पाप हो रहे हैं, यह सब पेट के लिए ही हो रहे हैं, ऐसा भी नहीं है ।

अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को नुकसान नहीं पहुँचाना, इतना भी करने के लिए आप तैयार हो ?

कई लोगों की तो नीयत इतनी खराब होती है कि उन्हें दूसरों का हड़पने में ही आनंद आता है । दूसरों का भला न हो तो चलेगा किंतु दूसरों का बुरा तो न करे । ऐसा करने पर भी पेट भरने के लिए तो मिलेगा ही ।

सभा में से– तृष्णा अमर्यादित है ।

पूज्यपादश्री– आपको पता है–**'तृष्णा अमर्यादित है'** तो फिर उसके शमन के लिए पाप क्यों करते हो ? चाहे जितना मिल जाय फिर भी तृष्णा शांत होनेवाली नहीं है । ऐसा जानने पर भी पाप करना, इसमें कोई बुद्धिमत्ता नहीं है । सच यह है कि **पेट भरने के लिए नहीं, किंतु पटारे भरने के लिए पाप होते हैं । तृष्णा की अधीनता के कारण ही पाप होते हैं ।**

सभा में से – नियम दो ।

पूज्यपादश्री–तृष्णा नाश के ध्येय से नियम लेना चाहिये ।

नियम लेकर भी जो परिग्रह बढ़ा देता है, इस प्रकार नियम भंग करने से तो नुकसान ही होता है । मात्र नियम से लाभ नहीं होगा लेकिन दिल में संयम का राग पैदा कर नियम ले तो विशेष लाभ होगा ।

तृष्णा का नाश धन की प्राप्ति से नहीं, संयम के राग से होगा । आपके पास तो क्या समृद्धि है ? पूर्वकाल में अमाप संपत्ति को छोड़कर अनेक भाग्यशालियों ने दीक्षा ली है ।

अपने पूर्वजों ने राज्यसुख और पार बिना की संपत्ति छोड़ी तो आपको क्या तकलीफ है ?

वे पुण्य पुरुष सुख-साह्यबी को तुच्छ मानते थे और आप लोग उसी

में मुग्ध बने हो, क्योंकि संयम का राग पैदा नहीं हुआ है । तृष्णा के अधीन बनकर कौन-सा पाप करने के लिए तैयार नहीं हो ?

सभा में से – एक भी नहीं ।

पूज्यपादश्री – उसका वर्णन करने में मजा नहीं है ।

कुत्ता हड्डी को चूसता है और उसके मुंह से खून निकलता है, परंतु वह खून चाटने में आनंद पाता है, वैसी हालत तृष्णातुरों की है ।

भौतिक सुखों का मोह अपनी आत्मा को बर्बाद करनेवाला है । अज्ञानी ही उन सुखों में मोहित होता है ।

जिन सुखों की प्राप्ति अपनी इच्छा के अधीन नहीं, प्राप्त सुख सामग्री का भोग अपनी इच्छा के अधीन नहीं । प्राप्त सुख स्थिर रहेंगे, यह भी अपनी इच्छा के अधीन नहीं और अंत में तो उन सुखों को छोड़कर जाना पड़ेगा । ऐसे सुखों के पीछे पागल बनकर धर्म को भूल जाना किसी तरह उचित नहीं है ।

आपको जिनेश्वर परमात्मा की आज्ञा की आराधना का जो सुंदर अवसर मिला उसे पौद्‌गलिक सुखों की तृष्णा के अधीन बनकर व्यर्थ ही गंवा रहे हो । ऐसा ही करोगे तो आत्म सुख प्राप्त नहीं होगा और इस भव के पापों के कारण पौद्‌गलिक सुख भी नहीं मिलेंगें । यदि यह सब संभव न हो तो कम से कम वस्तु को वस्तु के स्वरूप में माननेवाले बनो ।

आप कभी तीर्थयात्रा के लिए जाते हो ?

सभा में से – *जीवन में एक बार...।*

पूज्यपादश्री – बस ! एक बार भी तीर्थयात्रा क्यों करते हो ? नाम के लिए या रीतिरिवाज के कारण ?

आत्मशांति के लिए तीर्थयात्रा करते हो !

तीर्थयात्रा के लिए जाओ तो भी कभी सुसाधु का मिलन हो जाय और धर्म का ख्याल आ जाय ।

वर्ष में कुछ दिनों के लिए तीर्थयात्रा अथवा जहाँ सुसाधु हों, वहां अवश्य जाना चाहिये । सुसाधु के पास जाकर धर्म-चर्चा करोगे तो खूब लाभ होगा ।

सर्वथा पाप का त्याग कर धर्ममय साधुजीवन के जीने के लिए आप समर्थ हो तो कम से कम न्याय-नीति से जीवन जीए । अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को दुःख न दें, निःस्पृह बनकर दूसरों की मदद करों ।

सदाचारों का पालन करों । नित्य जिनपूजा व पच्चक्खाण करें । सामायिक व स्वाध्याय करें । प्रतिक्रमण करें । पर्वतिथि के दिन उपवास आदि तप के पौषध करें । इतना तो कर सकते हो न ?

सभी जिन पूजा करते हो तो जिनमंदिर भी स्वच्छ रहेगा ।

संयम की भावना पैदा करो, तो यह सब संभव है । सर्व विरतिधर न बन सको तो देशविरतिधर बनो । देशविरतिधर न बन सको तो समकिती बनो । जिनवचन पर दृढ़ श्रद्धालु बनो ।

वस्तु के वस्तुस्वरूप को मानों । तो भी इस भव में नहीं तो आगामी भव में संयम की आराधना कर सकोगे । अपने देव वीतराग और गुरू निग्रंथ ! अतः अपना ध्येय वीतराग बनने का और वीतराग बनने का उपाय साधु जीवन का स्वीकार !

जैनत्व की प्राप्ति हो तो ये बातें आपके हृदय में अच्छी तरह से जंच जाएगी, तभी वीतरागता के साधनभूत निग्रंथपने के लिए प्रयत्न हो सकेगा ।

आप सभी सच्चे जैन बनो और आपकी कल्याण कामना फलीभूत हो, यही एक शुभाभिलाषा ।

13

पाप त्याग और धर्मराग

वडुथ **माघ शुक्ला 6, वि.सं. 1994,**
दि. 06-02-1938, बुधवार

धर्म-साधना द्वारा राग-द्वेष का नाश कर अनंतज्ञानी बने महापुरुष जगत् के जीवों की चिकित्सा करते हुए फरमाते हैं–

`जगत् के जीव धर्म का फल चाहते हैं लेकिन पाप का फल नहीं चाहते हैं । **सुख और आबादी धर्म का फल है, दुःख और बरबादी पाप का फल है ।** सभी जीव सुख और आबादी चाहते हैं, दुःख और बरबादी किसी को पसंद नहीं ।'

दुन्यवी सुख और आबादी की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है ।

सच्चा सुख और आबादी की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है ।

सच्चा सुख मोक्ष में है और सच्चा सुख (सच्ची आबादी) आत्मगुणों के प्रकटीकरण में है । धर्म का उत्कृष्ट फल भी यही है । उस फल की प्राप्ति के बाद आत्मा को कुछ भी करने को बाकी नहीं रहता है, क्योंकि दुःख का सर्वथा क्षय हो जाता है और शाश्वत सुख की प्राप्ति हो जाती है । इस फल के ध्येय से ही धर्म-आराधना करनी चाहिये ।

मुक्ति के ध्येय से किया हुआ धर्म हमारी मुक्ति को निकट लाता है और जब तक आत्मा संसार में रहती है, तब तक उसे उच्च कोटि के पौद्गलिक सुख प्राप्त होते हैं अतः सुख और आबादी धर्म के ही फल हैं, यह बात निश्चित हो जाती है ।

दुःख और बरबादी पाप का फल है, यह भी निश्चित हो जाता है ।

संसारी जीवों को सुख और आबादी पसंद है अर्थात् धर्म का फल

पसंद है । दुःख और बरबादी पसंद नहीं है । अर्थात् पाप का फल पसंद नहीं है । इतना होने पर भी दुनिया में अज्ञानता आदि के कारण पापी जीवों की अपेक्षा ज्ञानी जीवों की संख्या बहुत कम हैं ।

ज्ञानी फरमाते हैं कि दुनिया के जीव धर्म का फल चाहते हैं और पाप का फल नहीं चाहते हैं, फिर भी धर्म का सेवन नहीं करते हैं और पाप का आदर करते हैं । दुनिया के जीव सुख के अभिलाषी और उसी के ध्येय को करनेवाले होने पर भी दुःखी क्यों होते हैं, उसका रहस्य ज्ञानी महापुरुषों ने बतलाा दिया है ।

महापुरुषों की भावना तो यही होती है कि **'दुनिया में कोई जीव दुःखी न रहें ।'** इस भावना के योग से उपकारी महापुरुष अनंतज्ञानी द्वारा की गई चिकित्सा का भान कराते हैं और उस मार्ग के अनुसरण की प्रेरणा देते हैं ।

'जगत् के जीवों का कल्याण हो' ऐसी भावना होने पर भी जब जगत् के जीव पाप का आदर व धर्म का अनादर करते रहेंगे, तब तक सुखी कैसे हो सकते हैं ?

दर्दी दवाई न ले और कुपथ्य का ही सेवन करता रहे तो कुशल डॉक्टर भी दर्दी को ठीक नहीं कर सकता है ।

कुपथ्य छोड़े नहीं और डॉक्टर के कहे अनुसार समय पर दवाई न ले तो दर्दी का दर्द बढ़ता ही है, लेकिन इसमें डॉक्टर जवाबदार नहीं है । इस प्रकार ज्ञानी महापुरुष भी संसारी जीवों को कर्म-रोग से मुक्त होने का उपाय बताते हैं । परंतु कर्म-रोग से पीड़ित संसारी जीव पापरूपी कुपथ्य का त्याग और धर्मरूपी औषध का सेवन न करे तो कर्म-रोग से मुक्ति कैसे संभव है ?

संसारी जीव पाप रूप कुपथ्य न छोड़े और धर्मरूपी औषध का सेवन न करे तो ज्ञानी महापुरुष भी उन्हें कैसे तार सकेंगे ?

ज्ञानी तो मार्गदर्शक हैं । उन्होंने कर्म-रोग के लिए कुपथ्य क्या और औषध क्या ? उसका यथार्थ स्वरूप बतलाया है । उनके कथन पर विश्वास रखकर उन तारकों की आज्ञानुसार चलेंगे तो ही कल्याण हो सकेगा ।

आज लोगों को धर्म का फल चाहिये लेकिन धर्म पसंद नहीं । पाप का फल नहीं चाहिये और पाप का आदर करते हैं ।

आज्ञा-आराधन रूप भावपूजा करो

सुखी होने का प्रयत्न स्वयं को ही करना पड़ता है । प्रयत्न दूसरों करे और फल किसी दूसरे को मिले ऐसा होता नहीं । मिलता हो तो उपकार भाव मे भरपूर हृदयवाले महापुरुष उपकार किए बिना नहीं रहते और परिणाम स्वरूप संसार में कोई दुःखी नहीं रहता । परंतु यह चीज असंभव होने के कारण ही ज्ञानी सिर्फ मार्गदर्शन दे कर रूक जाते हैं ।

महापुरुष फरमाते हैं कि–**भगवान की आज्ञा का अनुसरण, यही भगवान की सच्ची और उच्च कोटि की पूजा है ।**

भगवान की पूजा करे लेकिन भगवान की आज्ञा का अनुसरण न करे तो कल्याण नहीं होता है । अतः भगवान की आज्ञा का अनुसरण करना चाहिये ।

धर्म आराधना की बात आती हैं तब कई लोग अपनी **'अशक्ति'** का बहाना निकलते हैं ? वे कहते है **'जो करे उसे धन्यवाद । अपने से कुछ होता नहीं है'** क्या यह बात हृदय से कही जाती है ?

यदि हृदय से बोलते हो तो **'यह मुझ से कब होगा ?'** यह भावना पैदा हुए बिना नहीं रहेगी ।

'करे उसे धन्यवाद' बोलते हो तो करनेवाले के आचरण को कर्तव्यरूप मानते हो न ?

सभा में से – हाँ जी ।

पूज्यपादश्री – यदि हाँ, तो क्या आपको अपने कल्याण की इच्छा नहीं है ? **'मेरा कल्याण हो'** ऐसी इच्छा सभी को होती हैं तो दूसरे को धन्यवाद देनेवाला स्वयं धर्म करने के लिए उत्साही क्यों नही होता हैं ? स्वयं धर्म नहीं कर पाता है, उसका दुःख तो होना चाहिये न !

'करे उसे धन्यवाद' ये शब्द मात्र मुँह से नहीं बल्कि हृदय से भावपूर्वक बोले जाते हो तो मैं भी कब धर्म का सेवन और पाप का त्याग करुंगा ? ऐसी भावना हृदय में आए बिना नहीं रहेगी ।

उस भावना के योग से वह आत्मा पापत्याग व धर्म सेवन के लिए यथाशक्य मानसिक, वाचिक और कायिक श्रम किए बिना नहीं रहेगी ।

लज्जा गुण है और दंभ गुणनाशक है ।

पाप-त्याग और धर्म-सेवन के लिए प्रयत्नशील बनी आत्मा को जो उल्लसित हृदय से धन्यवाद देते हैं और **'मुझ से यह शक्य नहीं है'** यह बात दुःखी हृदय से बोलते हो, वे उत्तम कोटि की आत्माएँ हैं । उन आत्माओं को छोड़कर जो सिर्फ बोलने का दिखावा करते हैं, वे तो सिर्फ दंभ ही करते हैं ।

हम उनकी बातों को कैसे सत्य मान लें ? योग्य अवसर व आपकी योग्यता न हो तो आप झूठ बोल रहे हो, दंभी हो । **'ऐसा भले न कहें, लेकिन आपकी बातों में साधु 'हाँ' कैसे कहो ?'** लौकिक साधना में आप लोग कितने अप्रमादी हो । सीजन के समय कितने कष्ट उठाते हो । धर्म की आराधना में कमजोर बननेवाले अर्थ-काम की आराधना में कितने उत्साही और सहनशील बन जाते हैं !

वास्तव में धर्म के प्रति सच्ची आदर बुद्धि और पाप के प्रति सच्चा तिरस्कार भाव नहीं है । इस कारण कई बार शर्म के कारण रूढ़ आचारों के वश होकर असत्य बोलकर दंभ का सेवन करते हो, परंतु वह योग्य नहीं है ।

सरलता गुण है, किंतु दंभ तो गुणनाशक है । दंभ छोड़कर सरल बनो और हृदय खोलकर सद्गुरु को पूछो **'मेरी यह दशा है । इस स्थिति में पाप-त्याग व धर्म-सेवन किस प्रकार शक्य है ?'**

सद्गुरु को पूछोगे तो वे जरूर मार्ग बताएंगे और उस मार्ग पर चलोगे तो अवश्य पाप का त्याग और धर्म का सेवन कर आगे बढ़ सकोगे ।

भाग्य बलवान है

'हमें जो सुख मिला है, वह हमारी होशियारी और बुद्धि का फल है ।' आपकी यह मान्यता हो तो मैं कहता हूँ– **'चाहे जितनी होशियारी और बुद्धि हो, परंतु भाग्य विपरीत हो तो पेट भरने के लिए अन्न व तन ढंकने के लिए वस्त्र मिलना भी मुश्किल होता है ।'**

बहुत होशियारी होने पर भी भाग्य विपरीत हो तो गुलाम की तरह

नौकरी करनी पड़ती है और कई अल्प बुद्धिवाले भाग्यशाली गद्दी पर बैठे-बैठे लाखों कमा लेते हैं ।

'धर्म आराधना से सुख और पाप से दुःख मिलता है ।' इस बात पर आपको विश्वास हो तो मेरा प्रश्न हैं **'आप लोग सुख के ध्येय से पाप करने में अप्रमादी क्यों बनते हो ? और सुख के साधनभूत धर्म के आचरण में तैयार क्यों नहीं होते हो ? आप लोगों की मान्यता में अज्ञानता बहुत है ।'**

'पाप से दुःख और धर्म से सुख' यह आप सामान्य रूप से भी मानते हो तो मैं पूछता हूँ कि–सुख के लिए पाप सेवन और धर्म से पराङ्मुख बने रहना यह कैसे ?

दुनिया के लोगों को जागृत करने के लिए प्रयत्न करना यह हमारा कर्त्तव्य है । ज्ञानियों ने हमें सतत विहार करने की आज्ञा फरमाई है ।

संयम में मलिनता न आए और जनता को अदृष्ट वस्तु का भान हो, इस ध्येय से ज्ञानियों ने हमें सतत विहार करने की आज्ञा फरमाई है ।

सुख के इच्छुक जन समूह को सच्चे सुख के स्थान का भान हो और उस स्थान पर पहुँचने के मार्ग का भान हो और उस मार्ग के अनुसरण की प्रबल इच्छा पैदा हो, ऐसा प्रयत्न हमें अपनी मर्यादा में रहकर करना है ।

ज्ञानी महापुरुष फरमाते हैं कि दुःख से पीड़ित और सुख के इच्छुक जगत् के जीवों को अदृष्ट वस्तु का भान हो, पुण्य-पाप का ख्याल आए, आत्मा के स्वरूप का ज्ञान हो, अनंतशक्ति-संपन्न आत्मा की यह दुर्दशा क्यों हुई ? उसका ज्ञान हो और जगत् के जीवों में आत्म-कल्याण की भावना प्रकट हो, इसी में जगत् का एकांत हित है ।

जगत् के मनुष्यों को जितने अंश में यह ज्ञान कम होगा, उतने अंश में मनुष्य का ही नहीं, पशु-पक्षी आदि प्राणियों का भी अकल्याण होगा ।

जितने अंश में अदृष्ट वस्तु का ज्ञान बढ़ेगा, आत्म-भान और आत्म-कल्याण की कामना पैदा होगी, उतने अंश में जगत में शांति बढ़ेगी और जितने अंश में उसका अभाव होगा, उतने अंश में अशांति ही बढ़नेवाली है ।

आत्मा, पुण्य, पाप आदि का जिसे ख्याल नहीं है और जो दुन्यवी सुख का तीव्र पिपासु है, ऐसा मनुष्य जगत् के लिए श्राप रूप न बने तो क्या आश्चर्य ही होगा ?

संसार-रसिक अति खतरनाक हैं :–

विषय-कषाय में आनंद और अर्थ-काम के योग में सुख माननेवाले मनुष्य हिंसक पशुओं से भी ज्यादा खतरनाक हैं ।

स्वार्थी मनुष्य जितना उपद्रव मचाता है, उतना उपद्रव पशु भी नहीं मचाते हैं ।

संसार में आसक्त मानव में दुन्यवी पदार्थ पाने व उन पदार्थों के संरक्षण की जो भूख होती है, वह भूख व संग्रहवृत्ति पशुओं में भी नहीं होती है ।

पाप के प्रति उपेक्षित बना मानव योजनापूर्वक जो अमर्यादित हिंसा करता है, उतनी हिंसा पशु भी नहीं करता है ।

मनुष्य योजनापूर्वक पाप करता है और उन पापों को छिपाता है । कई ऐसे ठग होते हैं जो सरकार से भी पकड़े नहीं जाते हैं । कदाचित् पकड़े जाएँ तो वकीलों द्वारा अपना बचाव कर देते हैं ।

आज मनुष्य मात्र के सभी पाप प्रकट हो जाएँ तो वर्तमान सरकार के कानून के अनुसार भी कितने लोग पुलिस के पहरे बिना जेल बाहर रहने योग्य हैं ?

दुन्यवी स्वार्थ-साधक मनुष्य, पशुओं से भी ज्यादा खतरनाक होता है और अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए मनुष्य और पशु दोनों को अत्यधिक प्रमाण में मारनेवाला बने, इसमें कोई आश्चर्य नहीं हैं ।

ऐसे मनुष्य को मानव कहें या राक्षस ? यही विचारणीय है । जगत् में ऐसे मनुष्य ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं, त्यों-त्यों उपद्रव भी बढ़ते हैं, यह स्वाभाविक है ।

मनुष्य ऐसे अधम कार्य कर सकता हैं, इस कारण ज्ञानियों में मनुष्य भव की प्रशंसा नहीं की है, बल्कि धर्मशास्त्रकारों ने उसी के मनुष्य भव की प्रशंसा की है, जो मुक्ति की साधना की ओर आगे बढ़े हो ।

मनुष्य भव की उत्तमता मुक्ति की साधना के कारण है ।

मनुष्य को मनुष्य बनना है, और प्राप्त मानव भव को सार्थक बनाना है । पशु सुलभ निर्विवेक तथा देव सुलभ भोगमयता का त्याग करना चाहिये ।

निर्विवेकी और भोग का भिखारी मानवी पशु व देव से उत्तम कैसे हो सकता है ?

मनुष्य भव, देव व तिर्यंच से श्रेष्ठ है, क्यों ? क्योंकि मुक्ति की साधना मानवभव में ही संभव है ।

आज मुक्ति की साधना कितने लोग करते हैं ? अरे, मुक्ति की साधना की बात तो दूर रही, मुक्ति की साधना भी कितने को पसंद है ?

भोग सामग्री पाने की इच्छाएँ होती हैं । उस सामग्री को पाने के लिए मानवता छोड़कर भी मेहनत होती है, परंतु मुक्ति साधना की इच्छा कहां होती है ? यदि इच्छा ही न हो तो मुक्ति साधक सामग्री पाने की भावना भी कैसे होगी ?

मुक्ति की साधना पसंद हो तो पाप का डर अवश्य लगेगा ।

आज का अधिकांश वर्ग दूसरों को ठग कर खुश होता है । पापाचरण में आनंद मानता है । ऐसे लोग धर्म का बाह्य आचरण भी कर ले तो भी वे वास्तव में धर्मी नहीं हैं। **'हम देव-गुरू-धर्म को मानते हैं ।'** ऐसा मुंह से बोलते हैं, तो भी वे दंभ से बोलते हैं ।

वीतराग को देव के रूप में, उन तारक परमात्मा की आज्ञानुसार विचरण करनेवाले निर्ग्रंथ को और उनके द्वारा निर्दिष्ट धर्म को माननेवाले कदाचित् पाप के सर्वथात्यागी न हो तो भी कम से कम पाप सेवन के बाद आनंद माननेवाले तो नहीं होते हैं । ऐसा व्यक्ति संसार को सुख का कारण नहीं मानता है ।

आज कई लोग ऐसे हैं जो दूसरों को बताने के लिए **'हम देव-गुरू-धर्म को मानते हैं'** ऐसा बोलते हैं । परंतु स्व-पर को ठगनेवाले ही हैं ।

मछली को पकड़ने के लिए बगला कितना ध्यानस्थ हो जाता है । परंतु वह ध्यान प्रशंसनीय नहीं है ।

इसी प्रकार जो अन्य लोगों को विश्वास में लेने के लिए देव-गुरू-धर्म को मानने की बातें करते हैं, और थोड़ी बहुत पूजा आदि धर्म क्रियाएँ कर लेते हैं और रात-दिन संसार की साधना में ही लीन रहते हैं, ऐसे व्यक्तियों की बातों व क्रियाओं पर विश्वास करने जैसा नहीं है ।

भोले लोग दंभी व्यक्तियों पर विश्वास कर लेते हैं । दंभी लोग उन लोगों को ठगते हैं । भोले लोगों को ठग कर खुश होनेवाले दंभी लोग अपने आप को ही ठग रहे हैं । इसका वे विचार ही नहीं करते हैं ।

देव-गुरू का भक्त :–

वीतराग को देव, वीतराग की आज्ञानुसार संसार त्याग कर संयम आराधना में लीन मुनिवर को गुरू तथा मुक्ति के उपाय को धर्म माननेवाला अवश्य पाप से डरनेवाला होता है ।

देव, गुरू व धर्म को माननेवाला संसार की साधना में रत रहकर पाप सेवन में ही आनंद माने, यह कैसे संभव है ?

वीतराग परमात्मा को देव रूप मानते हैं तो वे तारक परमात्मा मुक्ति की साधना में लीन बनने का फरमाते हैं । मुक्ति की साधना के लिए पाप का त्याग और धर्म का सेवन करना चाहिये ।

उन तारक परमात्मा की आज्ञा में चलनेवाले निर्ग्रंथ मुनियों को गुरु मानते हो तो वे गुरु भगवंत भी यही बात बतलाते हैं ।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और सम्यग्तप की आराधना ही धर्म है और उनसे जितनी विपरीत प्रवृत्ति है, वह पाप प्रवृत्ति है ।

तारक परमात्मा के उपदेशानुसार सद्गुरु उपदेश देते है, यह उपदेश जिन्हें पसंद नहीं–वह देव, गुरू व धर्म को माननेवाला है–ऐसा कैसे कह सकते है ?

वास्तव में देव-गुरू और धर्म को माननेवाला वही कहलाता है जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप की आराधना में ही धर्म मानकर, इन्हीं चार की आराधना में अपने जीवन को सार्थक मानता हो और इनसे विपरीत आराधना को पाप प्रवृत्ति मानकर उन्हें त्याज्य मानता हो । सब को सुख

चाहिये, दुःख किसी को पसंद नहीं है । अतः ज्ञानियों ने उपाय बताया हैं–पाप छोड़ो और धर्म का सेवन करो ।

संपूर्ण पाप रहित और धर्ममय जीवन कौनसा होता है ?

वीतराग परमात्मा की आज्ञानुसार निर्ग्रंथ रूप में विचरण करनेवाले संसारत्यागी का जीवन ही ऐसा जीवन होता है ।

संसार में रहना और निष्पाप जीवन जीना, यह प्रायः संभव नहीं है । इस कारण ज्ञानियों ने संसार छोड़ने का और संयम की साधना में अप्रमत्त रहने का उपदेश दिया है ।

जब तक पाप नहीं छूटेगा तब तक दुःख से मुक्ति नहीं होगी । यह सीधी-सादी सरल बात है अतः दुःख-मुक्ति चाहते हो तो पाप त्याग में और सुख चाहते हो तो धर्म-सेवन में तत्पर बनना चाहिये ।

पाप चालू होगा और दुःख नहीं आएगा, यह कभी नहीं हो सकता है ।

पूर्व का पुण्योदय हो तो पाप करने पर भी थोड़े समय के लिए पौद्गलिक सुख मिल सकता है, परंतु उस सुख के भोग से जो पापकर्म का बंध होता है, उसके फलस्वरूप चिरकाल तक भयंकर दुःख सहन करना पड़ता है, क्योंकि पाप का फल दुःख ही है ।

ऐसे अल्पकालीन और दुःखमिश्रित सुख के भोग का त्याग कर मुक्ति साधना के लिए संसार को छोड़कर संयम की प्रवृत्ति में अप्रमत्त बनने में ही बुद्धिमत्ता है ।

ज्ञानियों की आज्ञानुसार संयम के सेवन से क्रमशः दुःख का नाश और शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है । यह बात हृदय में जंच जाय तो साधुता पर सच्चा प्रेम पैदा होगा । इसके फलस्वरूप साधु बनने का उपदेश देनेवाले सन्त महात्मा पसंद पडेंगे और **'कब मैं साधु बनूंगा ?'** यह भावना प्रकट होगी ।

सच्चे सुखी कौन ? :–

सच्चे साधु इस संसार में राजा-महाराजाओं से भी ज्यादा सुखी हैं ।

आप लोग दुन्यवी वैभव पाने में सुख मानते हो, किंतु यह आपकी भ्रांति है । बाकी आपका सुख क्या है ? आपकी चिंताएँ कितनी ?

आपको कितनी मजदूरी करनी पड़ती है ?

राजा–महाराजा और सेठ-साहुकारों को भी कम दुःख नहीं होता है । वे भी सत्ता और सेठाई के मोह में उसे गिनते नहीं हैं । वे कल्पित सुख में मशगुल रहते हैं । उन्हें प्राप्त सामग्री के संरक्षण और बढ़ाने की चिंता कम नहीं होती है ।

संसार में सुखी कौन ?– सांसारिक सुखों को छोड़नेवाला और आनेवाले दुःखों को समभाव से सहन करनेवाला इस संसार में सबसे अधिक सुखी है ।

जो मिला है उसे छोड़नेवाले को रक्षण आदि की चिंता नहीं, नवीन पाने की आशा नहीं और एक मात्र मुक्ति की साधना में ही जो लीन बना रहता है, वह इस संसार में सबसे अधिक सुखी जीवन जी सकता है ।

आत्म-चिंता करे :–

महापुरुषों ने एक महिना, दो महिना और छह-छह महिनें के उपवास किये । भयंकर उपसर्ग सहन किए और भयंकर बीमारी में भी आनंद का अनुभव किया । यह कैसे ?

क्योंकि उन्हें एक मात्र आत्मा की ही चिंता थी । आत्मा को छोड़ अन्य वस्तु, यावत् शरीर का कुछ भी हो, उन्हें तो सिर्फ आत्मा सुधर जाय तो बस है–ऐसी उनकी मनोवृत्ति थी । इसी कारण वे महात्मा घोर उपसर्गों में भी समभाव में रह सके थे ।

यह वृत्ति आ जाय तो साधुता दूर नहीं है । सच्ची साधुता बाद मुक्ति भी दूर नहीं है । इसी कारण ज्ञानी फरमाते हैं **'मनुष्य जन्म को सार्थक बनाने का एक मात्र उपाय सच्ची साधुता है ।'**

'श्री वीतराग परमात्मा द्वारा प्ररूपित साधुता कितनी आवश्यक व उपकारक है ।' इस बात को समझो और उनके प्रति सच्चा अनुराग पैदा करो !

जिसका ध्येय साधु बनने का नहीं है उससे सावधान रहना क्योंकि

दुन्यवी स्वार्थ की अतिलोलुप आत्मा किसकी गर्दन नहीं काटेगी इसका पता नहीं चलता ।

आशा का कभी अंत नहीं होता । आशावान् आदमी को अवसर मिले तो दूसरों को दुःख दिये बिना नहीं रहता । जिसमें पाप भीरुता होगी वही पाप के डर से दूसरों को दुःख नहीं देगा । पाप का डर न हो उसे कौन रोकेगा ?

पाप का डर हो, आत्म-कल्याण की भावना हो, तभी वीतराग परमात्मा के आज्ञा-पालन की रुचि होगी, जीवन में से स्वच्छंदता निर्मूल होगी, फलतः भव-भ्रमण टल जायेगा, पाप से बचने के लिए धर्म-साधना के लिए वीतराग परमात्मा की शरण में जाना चाहिये । अन्यथा पाप का डर होते हुए भी अज्ञान आदि के योग से पाप में धर्म और धर्म में पाप की मान्यता होगी । ऐसे लोग भी आज कम नहीं हैं ।

वे बेचारे पाप व धर्म के स्वरूप को जानते नहीं हैं, अतः कई बार पाप क्रिया में धर्म और धर्म क्रिया में पाप मान लेते हैं । अतः पाप से बचने और धर्म सेवन का निश्चय कर लेने के बाद भी वीतराग परमात्मा की आज्ञा की शरण लेना जरूरी है ।

वीतराग परमात्मा की आज्ञा की शरण स्वीकार करनेवाला, शक्य हो तो अवश्य त्यागी बनता है । परंतु सभी लोग इतने लघुकर्मी और सत्वशाली नहीं होते हैं, ऐसी असमर्थ आत्माएँ संसार त्याग न कर सके तो भी पाप से बचने व धर्म सेवन को बढ़ाने के लिए प्रयत्न कर सकती हैं ।

स्थूल हिंसा आदि पापों का त्याग, श्री जिनपूजा आदि धर्म क्रियाओं का आचरण, संपत्ति हो तो शासन प्रभावना के कार्यों में उसका सद्व्यय तथा जीवन में अनेक प्रकार के नियमों से नियंत्रण आदि कर सकती हैं ।

यह सब कब संभव है ?

संसार पर अरुचि और मोक्ष पर प्रेम पैदा हो तो तब । **लक्ष्मी जब त्याज्य लगती है, तब जीवन में उदारता आती है ।**

शरीर **'पर'** लगे तो शरीर का मोह घटे ।

शरीर का मोह पाप में जोड़ता है और धर्म से वंचित रखता है। शरीर पराया लगे तो मोह में भी फर्क पड़ेगा।

संसार रोग है :–

आज लोग संसार की साधना में मुक्ति की साधना भूल गए हैं। संसार की साधना में लीन रहना यह उत्तम कोटि के मनुष्यपने का नीलाम करने जैसा है।

संसार के अर्थीपन के कारण यात्रा के लिए जाने पर भी व्यापार की वस्तु देखने पर खरीदने का मन हो जाता है ?

संसार को रोग कहते हैं **'संसार रूपी रोग गए बिना, मुक्तावस्था रुपी निरोग अवस्था की प्राप्ति संभव नहीं है।**

'भव रोग है'– ऐसा आपको लगता है ? **भव ही भयंकर रोग है और यही रोग सभी दुःखों की जड़ है।**

जब तक भव रोग भयंकर नहीं लगेगा तब तक श्री वीतराग परमात्मा और उन तारकों की आज्ञानुसार विचरण करनेवाले मुनिवर पसंद नहीं पड़ेंगे और वीतराग की आज्ञा पालन की वृत्ति भी पैदा नहीं होगी।

श्री वीतराग परमात्मा और उन परमात्मा के आज्ञावर्ती मुनिवरों की आज्ञा का पालन नहीं होगा तब तक दुःख दूर नहीं होगा और सच्चा सुख प्राप्त नहीं होगा।

दुःख नापसंद है तो पाप छोड़ो और सुख पसंद है तो धर्म का सेवन करो, मेरी यही राय है। जो इस राय का अनुसरण करेंगे वह दुःख से सर्वथा मुक्त बनकर अनंत संपूर्ण और शाश्वत सुख प्राप्त करेगा, ऐसा अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा फरमाते हैं। सभी पाप के त्यागी और धर्म के आराधक बनकर दुःख के लेश से रहित शाश्वत व संपूर्ण सुख प्राप्त करें यही एक शुभाभिलाषा।

14
पाप से डरें

सातारा **माघ शुक्ला 7, वि.सं. 1994,**
दि. 07-02-1938, बुधवार

इस संसार में सभी जीव सुखी होना चाहते हैं परंतु **'सुखी कैसे बनते हैं ?'** इसका विवेकपूर्वक विचार करनेवाले लोग बहुत कम हैं ।

'वास्तविक सुख किसे कहते है ? वह सुख किस दशा में प्राप्त होता है ? वास्तविक सुख पाने के लिए कैसा जीवन जीना चाहिये ?' यह विचार न कर जैसा-तैसा जीवन जीया जाय तो दुःख दूर नहीं होगा और सुख भी प्राप्त नहीं होगा ।

आपको जो वस्तु चाहिये, वह वस्तु कहाँ है और कैसे मिल सकती है ? यह विचार कर योग्य प्रयत्न करो, तभी वह वस्तु प्राप्त हो सकती है, अन्यथा किये गये प्रयत्न निष्फल जाते हैं । इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है और विपरीत प्रयत्न हो तो नुकसान भी हो जाता है ।

दुनिया में कोई भी जीव, अपनी दुर्दशा हो ऐसा नहीं चाहता है । सभी व्यक्ति अपना परिश्रम सफल बनाना चाहते हैं । परंतु सुख के विषय में तो ऐसा ही हो रहा है । सुख प्राप्ति का ध्येय और सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्न होने पर भी वह प्रयत्न विपरीत होने से विपरीत फल अशांति और दुःख की ही प्राप्ति होती है ।

सुख चाहिये तो वह सुख किस दशा में और किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ? इसका विचार करना चाहिये । सुख की साधना के लिए विवेकपूर्वक विचार किया जाय और अनुभव-ज्ञानी महापुरुषों की सलाह ली जाय तो सुख के सच्चे साधनों का ख्याल आ सकता है ।

सच्चे साधनों का ख्याल आने पर पुरुषार्थ की दिशा ही बदल देनी

पड़ती है । योग्य मार्ग में पुरुषार्थ होने पर परिणाम स्वरूप सच्चे सुख की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहेगी । परंतु जहाँ विवेकपूर्वक विचार ही नहीं होता हो तो सुख के साधन कैसे मिलेंगे ?

वस्तु की कीमत वस्तु-स्वरूप के ख्याल पर अवलंबित है । वस्तु चाहे जितनी कीमती हो परंतु जिसे वस्तु के स्वरूप का ज्ञान ही नहीं है, उसके मन में उस वस्तु की कोई कीमत नहीं है ।

किस दशा में सुख की प्राप्ति होती है और वह दशा कैसे प्राप्त कर सकते है ? इसका विवेकपूर्वक विचार नहीं करनेवाले सुख के अर्थी होने पर भी सुख के साधन प्राप्त नहीं कर पाते हैं । सुख के सच्चे साधनों की प्राप्ति हुए बिना वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं होती है ।

इच्छा मात्र से सुख की प्राप्ति हो जाती है, तब तो इस संसार में एक भी आत्मा दुःखी नहीं मिलती । परंतु सभी जानते हैं कि संसार में हर व्यक्ति को कुछ न कुछ दुःख है ।

संसार में एक भी प्राणी ऐसा नहीं मिलेगा जो संपूर्णतया सुखी हो । इससे सिद्ध होता है कि इच्छा मात्र से सुख मिलता नहीं है । सुखी होने के लिए योग्य दिशा में प्रयत्न भी चाहिये । परंतु आज अधिकांश जीव सुख की आशा में अपने जीवन को व्यर्थ गंवा रहे हैं ।

महापुरुषों का कर्त्तव्य :–

सच्चे सुख की साधना में तन्मय बनना और अवसर आने पर दुनिया के जीवों को सच्चे सुख की राह दिखाना, यही महापुरुषों का कर्त्तव्य है । दुनिया में सबसे बड़े उपकारी वे महापुरुष ही हैं । वे अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा की आज्ञानुसार स्व-पर के कल्याण की प्रवृत्ति में रत रहकर अपने जीवन को सफल बनाते हैं और दुनिया के योग्य जीवों को सच्चे सुख का मार्ग बताकर उनके भी शाश्वत सुख में निमित्त बनते हैं ।

सच्चे साधुपुरुष दुनिया के लोगों को इसके सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं बताते हैं, क्योंकि वे किसी के अकल्याण में खुश नहीं होते और सभी के कल्याण की ही अभिलाषावाले होते हैं ।

दुःख के कारणों से दूर रहना, सुख प्राप्ति का मार्ग है । दुःख के कारण दूर हो जाय तो फिर सुख ही सुख है । दुःख के कारणों को जानने

के लिए अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा की आज्ञा का अभ्यास करना चाहिये और जीवन में उन आज्ञाओं के पालन के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिये ।

वीतराग परमात्मा की आज्ञा को समझने के लिए तथा उन आज्ञाओं का पालन करने के लिए श्रेष्ठ भव, मनुष्य भव है । यदि संकल्प किया जाय तो अन्य सभी भवों की अपेक्षा इस भव में सच्चे सुख की विशिष्ट साधना हो सकती है ।

यह तो सभी जानते हैं कि दुःख का मूल पाप और सुख का मूल धर्म है । **'पाप किए बिना दुःख नहीं आता और धर्म किए बिना सुख नहीं मिलता है ।'** यह सब की मान्यता है । अतः सुख पसंद हो तो दुःख के मूल पाप से दूर रहना चाहिये और दुःख के कारणों को नष्ट करने के लिए धर्म-सेवन में अप्रमत्त बनना चाहिये ।

संक्षेप में कह सकते हैं कि जीवन को निष्पाप और धर्ममय बनाना, यही सच्चे सुख की साधना का उपाय है । मनुष्य जीवन को सफल बनाने का यही एक मार्ग है ।

आज विचारहीनता बढ़ गई है । इस कारण सुखी होने की अभिलाषा होने पर भी निष्पाप व धर्ममय जीवन जीनेवालों की संख्या बहुत कम है । आज अधिकांश वर्ग पापमय व धर्महीन जीवन जी रहा है । इस स्थिति में सुख की तीव्र इच्छा होने पर भी दुःख दूर न हो और सुख प्राप्त न हो तो कोई आश्चर्य जैसी बात नहीं है ।

दुःख की बात है कि सब को सुख की तीव्र इच्छा है और अनंतज्ञानी वीतराग परमात्मा द्वारा प्रदर्शित सुख-प्राप्ति का उपाय भी विद्यमान है, फिर भी अधिकांश जीव विचारहीनता के कारण दुःख को ही बढ़ाते हैं और ऐसे उत्तम मानव भव को हारकर सुख की सच्ची साधना से वंचित रह जाते हैं ।

अशांति का मूल :–

सभी प्राणियों में मनुष्य अभिमानपूर्वक कहता है कि **'सभी प्राणियों में मैं महान् हूँ ।'** बात भी सही हैं । वास्तविक सुख-साधना की दृष्टि से जो शक्ति मनुष्य के पास है, वह अन्य किसी के पास नहीं है । परंतु **'मनुष्य भव पाकर मुझे अच्छे काम ही करने चाहिये, बुरे काम बिल्कुल नहीं करने चाहिये ।'** यह आवश्यक विचार कोई करता नहीं है ।

वर्तमान में अधिकांश मनुष्य अपने दुन्यवी स्वार्थ को ही अच्छा काम मान रहे हैं और इस कारण दुन्यवी स्वार्थ को साधने में ही मग्न हैं ।

कई लोग कहते हैं– **'दुनिया प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ रही है ।'** यह तो आत्मवंचना व परवंचना के बराबर है । अज्ञान व स्वार्थ की वृद्धि से आज दुनिया में अशांति बढ़ रही है ।

आज झूठ नहीं बोलनेवाले व्यक्ति की खोज करनी हो तो दोपहर में दीपक लेकर खोज करने पर भी नहीं मिलता है–क्योंकि झूठ नहीं बोलनेवालों की संख्या बहुत कम है ।

'झूठ नहीं बोलने से अपने दुन्यवी स्वार्थ का घात होता हो और थोड़ा झूठ बोल देने से दुन्यवी स्वार्थ की सिद्धि होती हो' ऐसे अवसर पर भी झूठ नहीं बोलनेवाला आदमी मिलना मुश्किल है ।

मोह माया में फंसे लोगों ने धर्म के लिए भी यह निश्चय नहीं किया है कि **'प्राणांत कष्ट आने पर भी अमुक धर्म का त्याग नहीं करूँगा ।'** ऐसा क्यों हुआ है ? इसका जवाब है–दुन्यवी स्वार्थ की तृष्णा बढ़ गई और आस्तिकता चली गई ।

व्यापारी का व्यापार नहीं चलता हो, नौकरी करनेवाले को नौकरी में तकलीफ आती हो, अथवा ज्यादा श्रम करने पर भी स्वार्थ सिद्ध नहीं होता हो, तभी आज के व्यक्ति को पाप जैसी चीज याद आती है ।

'इच्छित वस्तु न मिले या दुःख आने पर ही पाप का विचार करना यह आस्तिक का लक्षण नहीं है । आस्तिक आत्मा को हर संयोग में आत्मा-पुण्य-पाप व मोक्ष आदि का विचार करना चाहिये ।'

आज जगत् में जिन लोगों को दुःखी माना जाता है, उन लोगों की अपेक्षा आप सुखी हैं । समय पर खाना-पीना व पहनने-ओढ़ने के लिए मिलता है । जबकि अनेक मनुष्यों को **'कल क्या खाना ?'** इसकी भी चिंता है । कई लोगों के पास तन ढँकने के लिए भी वस्त्र नहीं हैं ।

'आदमी-आदमी में इतना फर्क क्यों ?' इसका भी विवेकपूर्वक विचार किया जाय तो हमारी आँखें खुल सकती हैं ।

आपकी इच्छा है **'मैं बड़ा धनवान बन जाऊँ ।'** इस इच्छा की पूर्ति के लिए आपने इच्छानुसार अनेक प्रयत्न किए, फिर भी आप धनवान नहीं

बने, जबकि राजा-महाराजा व सेठ-साहुकार के वहां पैदा हुआ बालक बिना श्रम के ही करोड़पति बन जाता है, यह सब आप प्रत्यक्ष देखते हो ।

एक साथ पैदा होनेवाले दो बच्चों में भी एक महासुखी और दूसरे को सुख का नामोनिशान नहीं । यह फर्क कैसे पडता है ? ईश्वर की कृपा से यह सब होता है तो यह मान्यता भी गलत है । ईश्वर की कृपा से सब कुछ हो तो ईश्वर सब पर कृपा क्यों न करे ?

ईश्वर तो वह कहलाता है, जो राग-द्वेष से पर हो । यदि ईश्वर, कृपा करते हो तो ईश्वर दयालु है या क्रूर ? यदि दयालु हो तो सभी पर उनकी कृपा होनी चाहिये, परंतु वैसा तो नहीं है ।

ईश्वर न तो रागी होता है और न द्वेषी । वास्तविक सुख की सच्ची राह दिखाकर ही ईश्वर ने अपने ऊपर उपकार किया है ।

एक साथ जन्मे दो व्यक्तियों के बीच भी फर्क क्यों रहता हैं ? यह बात ईश्वर ने बताई है । जन्म के साथ ही एक को अपार सुख-सामग्री मिलती है और दूसरे को भूखा-प्यासा रहना पडता है । वहां इस जन्म के किन कार्यों का फल मानोगे ?

इस जन्म में जो कुछ शुभ मिलता है, वह पूर्वजन्म के ही शुभ कर्म का फल है । इस जन्म के शुभाशुभ कर्म का फल भी कभी-कभी इस जन्म में मिल जाता है, परंतु मुख्यतया यही कहा जाता है कि पूर्वजन्म के कर्म का फल है । दुःख के लिए भी यही बात लागू पड़ती है । दुःख भी पूर्वजन्म के पाप कार्यों का फल है । यह सब सोचा जाय तो अगले जन्म की चिंता पैदा हो और धर्म और पाप को समझकर पाप छोड़ने की और धर्म करने का प्रयत्न करने की इच्छा होगी ।

परलोक का निर्णय :–

क्या सभी सेठ-साहुकार दयालु, ईश्वर-प्रेमी व धर्मप्रेमी हैं ? नहीं । आज बहुत से सेठ-साहुकार पापी, दयारहित और ईश्वर-प्रेम से रहित भी हैं ।

आज अधिकांश लोग स्वार्थी, प्रपंची, धर्मप्रेम से रहित व ईश्वर जैसी दिव्यशक्ति को नहीं माननेवाले भी हैं । फिर भी पेट के लिए आदमी उसकी सेवा करता है । दूसरों की मेहरबानी पाकर सुखी होने के लिए प्रयत्न करके आज का मानवी अपना जीवन पूरा करता है ।

मनुष्य जीवन का आयुष्य मर्यादित है । यहाँ से मरकर कहीं तो जाना है । परंतु यहां से मरकर कहाँ जाना? स्थान तय किए बिना मर जाना, मनुष्य को शोभा नहीं देता है । इंसान चाहे तो अच्छे स्थान पर जाने की तैयारी कर सकता है ।

शरीर की गंदगी को सभी देखते हैं, परंतु भीतर की गंदगी तो हम स्वयं ही देख सकते हैं ।

'मैं भीतर से कैसा हूँ ?' यह देखने की आपको फुर्सत है ? बाहर का गुन्हा बडा या भीतर का ?

बाहर से साहुकार दिखनेवाले और भीतर से गुन्हेगार मर कर अच्छे स्थान में जाएंगें, ऐसा कौन कह सकता है ?

कोई आदमी बाहर से बुरा काम करेगा तो उसे खराब कहनेवाले बहुत मिल जाएंगें, परंतु भीतर से खराब है और अच्छे दिखाने का दंभ करता है, ऐसे व्यक्ति का उद्धार असंभव है ।

अंतर में अत्यधिक मलिनता और उसे छिपाने के लिए इतना अधिक दंभ क्यों ? इस जिंदगी में अपने को अच्छा दिखाने के लिए न !

जिंदगी पूरी हो जानेवाली है, इसमें कोई शंका नहीं है । इस जिंदगी में जितना बुरा करोगे तो उसका बुरा फल भी भुगतना पड़ेगा, यह भी निश्चित है । अतः अंतर का मैल दूर करने का प्रयत्न करो । **बाहर से नहीं, किंतु मन से शुद्ध बनो । जिसका मन मलिन नहीं है, वह बाहर से मलिन होगा तो भी उसका कल्याण हो जाएगा, परंतु जिसका मन मैला है, वह बाहर से स्वच्छ होगा तो भी उसका कल्याण होनेवाला नहीं है ।**

'पाप का फल अवश्य भुगतना पड़ेगा' यह बात जंच जाय तो पाप का डर पैदा हुए बिना नहीं रहेगा ।

सेठ नौकर को तथा बलवान कमजोर को परेशान करता है । भले ही सेठ के सामने नौकर व बलवान के सामने कमजोर कुछ नहीं कर पाता है, परंतु उसके मन में तो यह विचार आता ही है– **'इनका कभी भला नहीं होगा ।'**

कदाचित् पाप के फल से आप यहाँ बच जाओगे परंतु उसका फल कहीं तो भुगतना ही पड़ेगा । कोई आपको दुःख देता हो तब भले ही आप

उसका प्रतिकार नहीं कर सकते हो, फिर भी हृदयपूर्वक यह कहते हो **'इसका बदला आपको भविष्य में अवश्य मिलेगा ।'**

उस समय आप यह क्यों नहीं सोचते हो–**'यदि मैं किसी के दुःख में भागीदार बनूँगा तो इसका बदला मुझे भविष्य में अवश्य मिलेगा ।'**

दूसरों को पाप का बदला मिलेगा और आपको पाप का बदला नहीं मिलेगा ? यदि इतना भी ख्याल आ जाय कि स्वार्थ के लिए हिंसा, झूठ, चोरी करना, लोभ के अधीन होकर बूरे काम करना इन सबका फल अवश्य मिलनेवाला है, तो फिर पाप का डर पैदा हुए बिना नहीं रहेगा ।

पाप-भय पैदा करो :–

भौतिक सुख में पागल व्यक्ति को आज पाप का डर नहीं है, परंतु लोगों का डर है । आज के मानवी को जितना लोगों का डर है, उतना पाप का डर नहीं है ।

सत्य तो यह है जो इंसान पाप से नहीं डरता है, वह इंसान इंसान नहीं है । जिसे पाप का भय नहीं, वह धर्म पाने के लिए योग्य नहीं । जिसे पाप का भय नहीं, वह व्यक्ति संत पुरुष के सहवास पाने के लिए भी योग्य नहीं है ।

पाप का भय बहुत बड़ा गुण है । जिसे पाप का भय है, वह व्यक्ति स्वतः अच्छा बन जाता है । ऐसे व्यक्ति को पाप करने का प्रसंग आएगा तो पहले नंबर पर वह बुरा काम करेगा ही नहीं, कदाचित् करना पड़े तो थोड़ा करेगा और वह भी दुःखी हृदय से ।

संयोगवशात् बुरा काम करने के बाद भी उसे पश्चात्ताप हुए बिना नहीं रहेगा । इस प्रकार करता हुआ वह पाप से निवृत्त हो जाएगा ।

निष्पाप और धर्ममय जीवन जीने के लिए पाप का भय तो नींव के स्थान पर है । सुखी होना हो तो पहले आप पाप मात्र से डरो । **'पाप का डर पैदा करने के लिए अनंतज्ञानी श्री वीतराग परमात्मा द्वारा पाप के फल में श्रद्धालु बनो ।'**

आज बड़े कहलानेवाले लोग भी बड़े-बड़े गुनाह करते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं है । वे बड़े-बड़े गुन्हें भी इतनी सावधानी से करते हैं कि सरकार द्वारा पकड़े नहीं जाते हैं । कदाचित् पकड़े जाय तो वकील आदि

की सहायता से रिश्वत आदि देकर निर्दोष छूट जाते हैं । इस प्रकार छूटकर कई लोग अपने आपको निष्पाप मान लेते हैं ।

क्या वह होशियारी है ? क्या वह होशियारी प्रशंसनीय है ? कांटों में निर्दोष छूट जाने मात्र से कोई व्यक्ति निष्पाप नहीं हो जाता है । उसे उसके पाप का फल अवश्य मिलने ही वाला है । इतना ही नहीं, किए पाप को छिपाने के लिए जो पाप किया गया, उसका भी फल भुगतना पड़ेगा । अतः निष्पाप दिखाने का प्रयत्न छोड़कर निष्पाप बनने का प्रयत्न करो, जिससे आप क्रमशः पाप के बंधन से छूट जाओगे ।

पाप का स्वीकार करो :–

सभा में से – पाप पापरूप लगे, इसके लिए कोई उपाय हैं ?

पूज्यपादश्री– यह भाई कहना चाहता है कि **'हम पाप तो करते हैं, परंतु उसे गलत मानने की वृत्ति नहीं है । अतः पाप को गलत मानने की वृत्ति हो जाय ऐसा कोई उपाय बताओ ।'**

इसका जवाब है–**'आप वस्तु स्वरूप का विवेकपूर्वक विचार करनेवाले बनोगे तो पाप को गलत मानने की वृत्ति पैदा हुए बिना नहीं रहेगी ।'**

आज का मानवी स्वार्थी बना है, दुन्यवी स्वार्थ साधना में वह इतना चकचूर बना है कि उसे सुख-दुःख के कारण का विचार ही नहीं है । विचारहीन बनकर गतानुगतिकता से वह दुन्यवी स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए प्रवृत्ति कर रहा है । इस स्थिति में से बचकर अपनी स्वार्थवृत्ति कम करो और महापुरुषों का संग कर वस्तुस्वरूप का विचार करनेवाले बन जाओ । ऐसा करोगे तो पाप अवश्य पापरूप लगेगा ।

तात्कालिक लंबा विचार न कर सको तो भी एक उपाय है–जब तक पाप पापरूप न लगे तब तक ज्ञानियों के कथनानुसार पाप को पापरूप मानों । ज्ञानियों ने जिसे पाप कहा हैं, उससे भयभीत बनो ।

व्यवहार में भी आप देखते हैं कि सज्जन पुरुषों का कहा माननेवाले अज्ञानी लोग भी अच्छी तरह से जीवन जीते हैं । छोटे छोटे बच्चे भी आगे चलकर विद्वान बन जाते हैं, वे शिक्षक के साथ वाद विवाद करते नहीं, किंतु शिक्षक का कहा हुआ मानने के कारण ही ।

डॉक्टर से दवाई लेते समय कोई तर्क या चर्चा नहीं करते हो ।

दुनिया में अज्ञानी लोग ज्ञानी के अधीन होकर चलते हैं । उसी प्रकार जब तक तुम्हें पापरूप न लगे तब तक **'ज्ञानियों ने इसे पाप कहा है, इसलिए पाप है और पाप होने से त्याज्य है'**–ऐसा मानने लगों ।

ज्ञानी के कथनानुसार पाप को पापरूप में स्वीकार कर पाप का त्याग करते जाओ । इस प्रकार करने से पाप घटेगा और कर्म मैल कम होगा । फिर स्वतः ही पाप, पापरूप लगेगा । ज्ञानी की शरण में रहने से आपके दुःख का सर्वथा नाश हुए बिना नहीं रहेगा ।

यह सब करने के लिए स्वार्थवृत्ति को घटाए बिना छुटकारा नहीं है, परंतु आज उसका विचार ही कहाँ है ?

आपके स्वार्थ की सिद्धि नहीं होती हो तो आपको दुःख होता है । उसी प्रकार दूसरे के स्वार्थ में आप बाधक बनते हो तो उसे भी दुःख होता है । इसीलिए ज्ञानी महापुरुष फरमाते हैं कि **दूसरे को आत्म तुल्य देखना सीखों । धर्म पाने का यही सच्चा मार्ग है ।** आज मनुष्य अपनी बुद्धि का सदुपयोग कम करता है । परमात्मा के नाम पर भी माया-कपट करनेवाले बहुत से लोग हैं । इन लोगों का उद्धार कैसे होगा ?

परमात्मा का नाम लेनेवाले, परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट पाप से नहीं डरते हो तो उनका उद्धार होना अशक्य ही है । अपना उद्धार करना हो तो दंभ का त्याग करो । **'अपने आपको पहचान लो । येन केन प्रकार से दुनिया में अपने आपको अच्छा दिखाने के बजाय, अच्छा बनने की कोशिश करो ।'**

अच्छा दिखाने के लिए बुद्धि का दुरुपयोग करने के बजाय, अच्छे बनने के लिए प्रयत्न करने में बुद्धि का सदुपयोग करो । अच्छे दिखाने से नहीं, अच्छा बनने से ही आपका कल्याण होगा ।

साधु ऊपर विश्वास रखो :–

आज शिक्षक को विद्यार्थी मिलते हैं और डॉक्टर को दर्दी मिलते हैं, परंतु परलोक के वैद्य को स्वस्थ होने की भावनावाले दर्दी कदाचित् ही मिलते हैं । दर्दी को वैद्य ऊपर तथा विद्यार्थी को शिक्षक ऊपर जितना विश्वास है, उतना विश्वास आपको साधु भगवंत के ऊपर है ? यदि वह विश्वास आ जाए और साधु जो कहे वह मानने लग जाओ तो आपका जीवन सुधरे बिना नहीं रहेगा ।

आज इतना निर्णय कर लो–**'हम भीतर से जैसे होंगे, उससे विपरीत बाहर दिखाने का प्रयत्न नहीं करेंगे । सभी लोगों में हम यह विश्वास पैदा कर देंगे कि हम भीतर में जैसे होंगे, वैसा ही बाहर बताएंगे ।'** इतना करे तो भी काफी फर्क पड़ सकता है ।

सभी दंभ छोड़कर प्रामाणिक बन जाय तो परस्पर जो अविश्वास है, वह नहीं टिकेगा । आज किसी को किसी के ऊपर विश्वास है ?

अनजान में भूल हो जाने के बाद उस भूल को जाहिर करने में बड़ी तकलीफ आ जाती हो तो ऐसे समय में उस भूल का स्वीकार करनेवाले कितने हैं ?

'हम जैसे हैं, उससे विपरीत दिखाने की कोशिश नहीं करेंगे ।' इस प्रकार का प्रामाणिक निर्णय करने के साथ ही आपका जीवन बदलने लगेगा । आपके जीवन में से पाप घटने लगेंगे ।

आप लोग पाप को नहीं समझते हो, ऐसी बात नहीं है, परंतु आज कई लोगों को पाप छोड़ने की बात ही पसंद नहीं है । इसका कारण है–**'पाप का फल है'** ऐसा आप लोगों को विश्वास नहीं है ।

कई लोग मानते हैं–**'ईश्वर तो एक है और दुनिया में पाप करनेवाले अनेक हैं । वह सबके पापों को कैसे याद रख सकेगा ? वह मेरे पाप को भी भूल सकता है ।'** इस प्रकार के विचार से भी कई लोग पाप करने में निर्भय बन जाते हैं ।

पाप में निर्भय बन जाने से पाप का फल भुगतना नहीं पड़ेगा, ऐसी बात नहीं है ।

ईश्वर न तो पाप का हिसाब रखता है और नहीं पाप का फल देता है । पाप के योग में बंधा हुआ दुष्कर्म ही उदय में आकर दुःख देता है ।

खाने में कोई भूल हो जाय तो सिर्फ हाथ जोड़ने से वह भूल दूर नहीं होती है, इस प्रकार पाप के फल को नहीं मानना, यह तो बुद्धि का दिवाला ही है ।

शांति का उपाय :–

आज अपना मुख्य विचार है–यदि परमात्मा का सच्चा सेवक व उच्च कोटि का आराधक बनना हो तो पाप से डरना सीखो ।

पाप से डरनेवाला आज नहीं तो कल अवश्य सुधरेगा । पाप का भय आएगा तो आप स्वतः दयालु बनोगे, नीतिमान बनोगे, लोभ और असंतोष दूर होंगे ।

पाप के डर से जीवन में काफी सुधार होगा । **'अनेक पापों से आप बच जाओगे, जीवन में धर्मवृत्ति आएगी । अर्थात् इहलोक में भी शांति प्राप्त होगी तथा परलोक में भी सुख की साधना अच्छी हो ऐसी उत्तम सामग्री प्राप्त हो सकेगी ।'**

पाप-त्यागी बनने के लिए आत्मा और जड़ के संयोग को समझना होगा । पर में स्व-बुद्धि व स्व में पर-बुद्धि रूप मिथ्यात्व दूर करना चाहिए । **'जड़ कर्मों के अनादिकालीन संयोग से ही आत्मा दुःखी है ।'** यह जानकर जड़ के योग को दूर करने के लिए ज्ञानी के बताये हुए प्रयत्न करने चाहिये । इस ध्येय से पाप का सर्वथा त्याग कर संपूर्ण धर्ममय जीवन का स्वीकार करना चाहिये । यह संभव न हो तो **'किसी निरपराधी जीव की हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, परस्त्री को बुरी नजर से देखना, ममत्वपूर्वक धन चढाना, क्रोध करना, गर्व करना, माया करना, अतिलोभ करना, झगडे करना आदि बड़े बड़े पापों का त्याग करने के लिए प्रयत्न करना चाहिये ।'**

अनुकूल जड़ पदार्थ की प्राप्ति में आनंद मानना, यह भी पाप का कारण है । इच्छित की प्राप्ति न होने पर दुःखी होना भी पाप का कारण है ।

दुनिया के पदार्थों को अपना मानना भी पाप है । जो वीतराग नहीं है, उसे देव मानना, वीतराग की आज्ञानुसार जीवन न हो उसे गुरु मानना तथा सच्ची दया से रहित धर्म को धर्म मानना भी पाप है ।

सत्य को असत्य व असत्य को सत्य मानना भी पाप है । इस प्रकार पाप के अनेक प्रकार हैं ।

पाप का भय पैदा कर निष्पाप व धर्ममय जीवन जीने के लिए प्रयत्न करने में ही अमूल्य मानव-जीवन की सार्थकता है ।

सभी पाप से डरनेवाले बने । अपने जीवन को निष्पाप व धर्ममय बनाने के लिये प्रयत्न में लग जाय और अंत में जड़ के योग से मुक्त होकर शाश्वत संपूर्ण सुख प्राप्त करे यही एक शुभाभिलाषा ।

15

आत्मवादी बनो

कोरेगाँव **माघ शुक्ला 8, वि.सं. 1994,**
दि. 08-02-1938, बुधवार

सभी तत्त्वज्ञानी महापुरुषों ने मानवभव की महत्ता का स्वीकार किया है । अन्य भवों की अपेक्षा यह भव सुंदर होने से इसकी खूब-खूब प्रशंसा की है । ऐसे मानव भव की जिन्हें प्राप्ति हुई है, उन्हें सोचना चाहिये कि **'इस भव की प्रशंसा किस कारण की गई है ?'**

असार वस्तु का त्याग और सारभूत वस्तु का स्वीकार करने की जो शक्ति मनुष्य में है, ऐसी शक्ति अन्य किसी जीव में नहीं है । इस कारण तत्त्वज्ञानी महापुरुषों ने मानवभव की महत्ता गाई है ।

तत्त्व-चिंतन की आवश्यकता :–

मानव जन्म को प्राप्त कर जो मनुष्य असार वस्तु के त्याग व सारभूत वस्तु के स्वीकार के लिए प्रयत्न न करे तो उसे प्राप्त मानव भव निष्फल ही माना जाएगा । असार वस्तु के त्याग व सारभूत वस्तु के स्वीकार के लिए तत्त्व-चिंतन जरूरी है ।

तत्त्व-चिंतन करने से आत्मा को सारभूत व असारभूत वस्तु के स्वरूप का ख्याल आता है तथा असार के त्याग व सार के स्वीकार की प्रेरणा मिलती है ।

तत्त्व-चिंतन में मग्न रहनेवाले मानव कितने ? बहुत ही कम ! आज बहुत कम लोगों को तत्त्वज्ञान संपादन की इच्छा होती है । तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिये और फलतः असार का त्याग व सार का स्वीकार करना चाहिये । इतना ख्याल बहुत कम लोगों में दिखता है । इस कारण मनुष्य

जन्म महत्वपूर्ण होने पर भी उसकी प्राप्ति द्वारा जो लाभ होना चाहिये वह नहीं होता है, अतः अधिकांश लोगों का मानवजन्म निष्फल ही जाता है ।

तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति के लिए तत्त्व ज्ञाता की शरण स्वीकार करनी चाहिये । तत्त्वों की वास्तविक प्ररूपणा कौन कर सकते हैं ?

तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप का बोध अनंतज्ञानी सर्वज्ञ तथा सर्वज्ञ कथित तत्त्वज्ञान के अभ्यासी ही दे सकते हैं ।

उच्च कोटि के तत्त्वज्ञानी महापुरुषों ने यही कहा है कि इस मनुष्य जन्म को सार्थक करने के लिए वीतराग परमात्मा की आज्ञानुसार आचरण करने के लिए प्रयत्न करना चाहिये और उसके लिए सर्वज्ञ कथित आज्ञाओं का अभ्यास करना चाहिये ।

श्री वीतराग परमात्मा की आज्ञानुसार जीवन जीए तो इस जीवन को सफल कर सकते हैं, क्योंकि **असार वस्तु का त्याग और सार वस्तु का स्वीकार करना, यही वीतराग परमात्मा की आज्ञा है ।**

असार का त्याग और सार का ग्रहण यही धर्म की आराधना है । मनुष्य भव पाकर धर्म की आराधना से वंचित रहे तो यह प्राप्त सामग्री का दुरुपयोग ही कहा जाएगा ।

जिसे मनुष्य भव नहीं मिला वे तो कह सकते हैं, **'हम क्या करे ? हमें भव संबंधी प्रतिकूलता है, परंतु आप क्या कहोगे ?'**

मनुष्य भव मिलने के बाद जो दुरुपयोग करता है वह, जिसे मनुष्य भव नहीं मिला, उसकी अपेक्षा दुर्भागी ही कहा जाएगा । आपको मनुष्य भव मिला इसके लिए आप महाभाग्यशाली हो, परंतु वह भाग्यशालिता सफल कब ? यदि आप अपने जीवन में त्याज्य का त्याग और ग्राह्य का स्वीकार करोंगे तथा प्राप्त सामग्री का सदुपयोग करोगे ।

कीमती वस्तु की प्राप्ति से नहीं, परंतु उसके सदुपयोग से आनंद पाना चाहिये अतः आपको जो सामग्री मिली है, उसका सदुपयोग करो, यही इच्छनीय है ।

आत्मा की ही चिंता करो :–

आज स्वदेह, स्वगृह, कुटुंबीजन, स्वदेश, मनुष्य जाति और आगे

चलकर प्राणीमात्र को दुन्यवी दृष्टि से सुखी बनाने के प्रयत्न में धर्म माना जाता है, परंतु यह मान्यता भ्रामक है । **जड़ पदार्थों के योग से मनुष्य या प्राणी मात्र को वास्तविक सुख की प्राप्ति हो, यह असंभव है ।** जड़ पदार्थों का योग सदा काल टिकता नहीं है, यह अनुभवसिद्ध बात है ।

किसी भी व्यक्ति को संपूर्णतया जड़ पदार्थ मिलते ही नहीं हैं, जो भी मिले हैं उनका वे इच्छानुसार भोग नहीं कर सकते ।

अनुकूल जड़ पदार्थ मिलते नहीं हैं, मिले हों तो उनका भोग नहीं कर पाते हैं अथवा टिकते नहीं हैं, अतः कई मानव भ्रमित होते हैं ।

इस जीवन के अंत के साथ ही प्राप्त और सुरक्षित जड़ पदार्थ यहाँ रह जाते हैं, अतः वे शाश्वत सुख देने में समर्थ नहीं हैं ।

शरीर सुख के लिए किए गए प्रयत्नों से भी कल्याण नहीं होता है, क्योंकि शरीर स्वयं नाशवंत है । आत्मा की चिंता करना यही कल्याण का मार्ग है । आत्मा शाश्वत है अतः उसकी ऋद्धि सदाकाल रहनेवाली है, और आत्म–ऋद्धि के प्रकटीकरण में ही सच्चा सुख रहा हुआ है ।

सुखाभास :–

आज अनेकों को आत्म-स्वरूप का ख्याल नहीं है । **आत्मा के वास्तविक स्वरूप भान हो जाय तो दुन्यवी चीजों का संसर्ग दुःखदायी लगे बिना न रहे ।** जड़ के योग से आत्मा दुःखी हो रही है । जड़ के बंधन से ही आत्मा की ऋद्धि आवृत हो गई है और दुःखमय दशा का भोग बनती है । इस सत्य को समझ ले तो जड़ के योग में सुख की कल्पना नहीं होगी ।

आज तो सारी दुनिया सुखाभास में मोहित बनी हुई है । अज्ञानता के कारण जड़ के योग में उसे सुख दिखता हो परंतु तत्त्वज्ञानी फरमाते हैं कि सुखाभास में से दृष्टि हटाकर आत्मसुख के अर्थी बनो ।

भौतिक समृद्धि में ही कल्याण मानने वाले जीवों को लगता हैं कि इस दुनिया में साधु भारभूत है । वास्तव में इस दुनिया में भारभूत कौन हैं ? यह विचारणीय हैं ।

स्वार्थ में मग्न रह कर जो दूसरों के अकल्याण के प्रति बेपरवाह रहते हैं और पर-कल्याण नहीं करते हो वे ही इस दुनिया में भारभूत हैं ।

भौतिक समृद्धि में मस्त बना हुआ वर्ग इस दुनिया में सिर्फ भारभूत ही नहीं, बल्कि श्रापभूत भी है, क्योंकि वे अपने थोड़े से स्वार्थ के लिए दूसरों को भयंकर नुकसान पहुँचाने के लिए तैयार रहते हैं । अपने स्वार्थ के लिए अनेक जीवों का घात करने में भी नहीं हिचकिचाते हैं । क्षणिक शरीरसुख के लिए अनेक जीवों की हिंसा करते हुए भी उनका हृदय कंपित नहीं होता है । ऐसे लोग जब सच्चे साधुओं के लिए ये तो दुनिया में भारभूत है, तब अधमकोटि के उन अज्ञानी आत्माओं के लिए दया ही आती है ।

सच्चे साधु तो कल्याण विभूति हैं :–

सच्चे साधु तो इस दुनिया में आशीर्वाद रूप हैं, क्योंकि वे निर्दोषतया आत्म-कल्याण की साधना करते हैं और अपनी शक्ति अनुसार दुनिया के लोगों को कल्याणमार्ग पर जोड़ने के लिए प्रयत्न करते हैं ।

सच्चे साधु लौकिक आंदोलनों में पड़ते नहीं हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि वे उन आंदोलनों से अज्ञात होते हैं । वे जानते हैं कि लौकिक दृष्टि में डूबे हुए जीव स्व-पर का सच्चा कल्याण नहीं कर सकते हैं ।

सच्चे साधु दुन्यवी पदार्थों के लिए किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाते हैं । जबकि भौतिकवाद में डूबे हुए लोग अवसर आने पर मानवता को भी भूल जाते हैं । अपने क्षुद्र स्वार्थ की साधना के लिए राक्षस जैसे बनकर अनेक जीवों को पीड़ा पहुँचाते हैं ।

सच्चे साधु तो इस जगत् में कल्याण विभूतियाँ हैं, क्योंकि वे किसी को भी दु:ख पहुँचाते नहीं, संयम रखकर अनेक जीवों की रक्षा करते हैं और विश्व के कई आत्माओं के कल्याण में कारणभूत बनते हैं । फिर भी अधम कोटि के अज्ञानी जीव सच्चे साधुओं की निंदा करके पाप उपार्जित करते हैं, अतः वे दु:खी होते हैं ।

सभा में से – सच्चे साधु नहीं, लेकिन भिखारी तो तिरस्कार पात्र हैं ?

पूज्यपादश्री :– भिखारी भी तिरस्कार-पात्र नहीं, बल्कि आश्रय-पात्र हैं । इस भव की मेहनत से ही दुन्यवी वस्तुएँ मिलती हैं, इस बात को भूल जाओ । श्रम करने पर भी जिसका भाग्य होता है, उसी को सुख

मिलता है । भाग्यशाली को तो बिना मेहनत भी दुन्यवी पदार्थ मिल जाते हैं और कई इतने हीन भागी होते हैं कि जिन्हें मजदूरी भी नहीं मिल पाती है ।

पुण्योदय और पापोदय के प्रकार समझे तो सब ख्याल में आएगा । परंतु तत्त्वज्ञान पाने की चिंता ही किसे हैं ?

भिखारी को भी आश्वासन दो । भिखारी को इस प्रकार दो कि उसका जन्म सुधर जाए । भिखारी को भीख देने वाले भी कुछ लोग तिरस्कारपूर्वक भिक्षा देते हैं । भिखारी को तिरस्कारपूर्वक भिक्षा न दे, परंतु उदारतापूर्वक दें । देते समय आपका अनुकंपा भाव प्रदर्शित होना चाहिये । इसके साथ ही उसे प्रेम से कहो, **'भाई ! तू भी मनुष्य है और मैं भी मनुष्य हूँ । तू याचना करता है और मैं देता हूँ । ऐसा क्यों हुआ ? इसका विचार कर ! पूर्व भव में किए गए अशुभ कर्म के योग से जीव इस भव में दुःखी होता है और पूर्व भव में किए गए शुभ कर्म के योग से जीव सुखी होता है ।**

पापोदय के कारण तूं दरिद्र बना है, और तुझे भीख मांगने का अवसर आया है, अब इस जीवन में ऐसा आचरण कर जिससे पूर्व का पाप समाप्त हो जाय और नए पाप का बंध न हो । पापोदय से प्राप्त स्थिति को समभाव से सहन कर और आत्मा का कल्याण कर । अवसर देखकर ये बातें कहकर उदारतापूर्वक भिक्षा दो, तो उसकी आत्मा को कितनी शांति मिले ?'

आपके जैसे दाता को वह जिंदगी भर नहीं भूलेगा । योग्यता होगी तो वह भिखारी भी सुधर जाएगा ।

विदेशों में भिक्षा मांगना गुनाह माना जाता है । अतः पूर्व के पापोदय से दरिद्र बने हुए या तो आत्महत्या करते हैं या चोरी आदि भयंकर पाप करते हैं अथवा विद्रोह करते हैं । इस देश में भी अनुकंपा बुद्धि नष्ट हो रही हैं, क्योंकि तत्त्व एवं तत्त्वज्ञान का अभ्यास रहा नहीं है । इस कारण अज्ञान व स्वार्थ की मात्रा बढ़ गई है ।

आत्मकल्याण घातक सिद्धांत :–

आज अधिकांश वर्ग धर्म से पराङमुख बना है और जो वर्ग धर्म करता है, उसमें भी अधिकांश भाग जड़ पदार्थों की इच्छा-पूर्ति को लिए ही धर्म करता है ।

धर्म तो आत्म-कल्याण के लिए होना चाहिये । दुन्यवी सुख के लिए किये गये प्रयत्न से अनंत आत्माओं का अकल्याण हुआ है । दुन्यवी सुखों के लिए आज अनेक पाप हो रहे हैं । हम तो उस तृष्णा के त्याग और आत्म-सुख के लिए प्रयत्न करने का उपदेश देते हैं ।

कई लोग कहते हैं, **'आप अमुक व्यक्ति व अमुक सिद्धांत को क्यों नहीं मानते हैं ?'**

जवाब स्पष्ट है । **आत्म-कल्याण के लिए हानिकारक किसी भी व्यक्ति या सिद्धांत को मानने के लिए हम तैयार नहीं हैं, क्योंकि उसमें किसी का कल्याण नहीं है ।**

आत्म-सुख के प्रकटीकरण के लिए किए गए प्रयत्न में ही मनुष्य व प्राणी मात्र का कल्याण है, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है । इस कारण हम उन्हीं व्यक्तियों को उपकारी मानते हैं, जो आत्म-सुख के प्रकटीकरण के प्रयत्न में सहायक बनते हैं । जिन सिद्धांतों का आश्रय लेकर अनंत आत्माओं ने आत्म-सुख प्रकट किया है और आज भी योग्य आत्माएँ उस सिद्धांत का आश्रय लेकर आत्म-सुख को प्रकट कर रही हैं । हम उन्हीं सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार में स्व-पर का कल्याण मानते हैं ।

आप सभी मानव हो । इतने वर्ष कुछ न कुछ प्रवृत्ति करने में व्यतीत किए हैं । अपने जीवन का ध्येय क्या है ? इसका कभी विचार किया है ?

आपने अपनी आत्मा का कितना भला किया ? दूसरों का कितना भला किया ? निःस्वार्थ भाव से कितना परमार्थ किया ? अथवा दूसरे के सुख-दुःख का विचार किए बिना अपने दुन्यवी स्वार्थ की साधना में ही जिंदगी पूरी कर दी ?

क्या इस कीमती जिंदगी को ऐसे ही गंवा देनी हैं ? आपको जब अपनी आत्मा की ही चिंता नहीं है तो फिर अपने संबंधियों के आत्मा की चिंता तो कहाँ से हो ?

जिंदगी के अंत तक इस देह की ही चिंता करते रहोगे तो भी यह देह तो यहीं रहनेवाली है और आपकी आत्मा अन्यत्र चली जाएगी ।

आत्मा अकेली आई है और अकेली जाएगी । सिर्फ पुण्य-पाप साथ

में जाएंगे । इस जीवन में विवेकी बनने के लिए सुंदर अवसर हाथ लगा है, फिर भी विवेकी नहीं बनोगे तो क्या हालत होगी ? इस जीवन का अंत तो आएगा ही और निर्विवेकता के कारण आत्मा भयंकर दुर्गति के गर्त में डूब जाएगी ।

आप लोग प्रवचन सुनने के लिए आए–रूढ़ि से या किसी ध्येय से ? आत्म-हित के निश्चित ध्येय से प्रवचन सुनने के लिए आए होते तो तात्त्विक प्रश्न पूछे बिना नहीं रहते ।

साधुओं को धामधूम से ले आना और वे जो कुछ कहें उसमें हां जी हां कह देना और उन्हें विदाई दे देना, इतने मात्र से आपको क्या विशेष लाभ होगा ?

साधुओं को सम्मान-दान साधुपने को प्राप्त करने की भावना से हो तो महान लाभ हो सकता है । भौतिकता की ओर रही हुई अपनी मनोवृत्ति को बदले बिना कल्याण होनेवाला नहीं है ।

भविष्य को सुधारना हो तो तत्त्व-चिंतक बनो तथा सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की उपासना के लिए प्रयत्नशील बनो । आत्म-कल्याण का ध्येय रखो ।

हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म तथा पौद्‌गलिक पदार्थों की ममता के त्याग के लिए प्रयत्न करो । अनंतज्ञानी द्वारा निर्दिष्ट आत्म-ऋद्धि को प्रकट करनेवाले अनुष्ठानों के आचरण में अपनी शक्ति-सामग्री का सद्‌व्यय करो ।

इस प्रकार आचरण करोगे तो तत्त्वज्ञानी महापुरुषों ने इस मानव भव की जो प्रशंसा की है, उसे सार्थक बना सकोगे ।

अनंतज्ञानी श्री वीतराग परमात्मा की आज्ञानुसार वर्तन कर सभी अपना कल्याण करें, यही एक शुभाभिलाषा ।

16

मानव जीवन की सार्थकता

रहेमतपुर **माघ शुक्ला 9, वि.सं. 1994,**
दि. 09-02-1938, बुधवार

ज्ञानी फरमाते हैं **'यह मनुष्य जन्म दुर्लभ है ।'** दुनिया के लोग भी अन्य भवों में मानव भव को कीमती मानते हैं । सभी मनुष्य मानते हैं कि यह मनुष्य जन्म मिला, यह हमारा बडा पुण्य है ।

इस मनुष्य जीवन को सफल कैसे किया जाय ? यह विचार करनेवाली आत्माओं की संख्या बहुत ही कम है । आपको सिर्फ मनुष्य भव ही नहीं मिला है, साथ में वीतराग परमात्मा के शासन की आंशिक झांकी हो, वैसा सुन्दर योग भी मिला है । इसलिए आप विशेष भाग्यशाली हो । फिर भी यदि आप प्राप्त सामग्री को सफल बनाने का विचार नहीं करोगे तो यह आपके मंद भाग्य की निशानी होगी ।

दुनिया में भी जिसे सामग्री नहीं मिली है, उसकी अपेक्षा सामग्री मिलने के बाद जो सदुपयोग नहीं करता है, वह ज्यादा भाग्यहीन माना जाता है ।

प्राप्त मनुष्य भव को सफल बनाने के लिए विचार करने के लिए किसके पास समय हैं ?

वृद्धों के पास ? युवको के पास ? बालको के पास ? या किसी के पास नहीं ? इसका क्या जवाब दोगे ?

साधु सन्मान किसलिए ? :–

देव का योग मिलने पर, गुरु का योग मिलने पर तथा धर्म करने की सामग्री प्राप्त होने पर आत्मा को आनंद होता हैं । वह आनंद आपको होता हैं ? यदि होता हो तो रूढि मात्र से या उससे अधिक ?

साधु के प्रति आपका बहुमान भाव किसा प्रकार का है ? साधु भगवंत वीतराग परमात्मा की आज्ञानुसार जीवन जीकर अपने मनुष्य जीवन को सफल बनाते हैं, इस कारण वे सन्मान के पात्र हैं । उन साधुओं का सन्मान करेंगे तो अपनी आत्मा भी उस उच्च दशा को पाने के लिए योग्य बनेगी । यही ध्येय साधु के सन्मान देने में होना चाहिये ।

आपका भी यही ध्येय है या अन्य कोई ?

आप देव को नहीं पहचानते हो, उसी प्रकार गुरु को भी नहीं पहिचानते हो । यदि कोई ऐसा कहे तो उसको इन्कार करने के लिए आपके पास क्या प्रमाण हैं ?

आप देव और गुरु को नहीं पहचानो, यह कैसे हो सकता है ?

दस-दस वर्षों से जिनकी प्रतिष्ठा मंदिर में हुई हैं, उन देव को पहचानने के लिए कितना प्रयत्न किया ? क्या गाँव की इज्जत बनाए रखने के लिए मंदिर बनाया है ? देव-गुरु और धर्म को नहीं पहचानोगे तो आपकी क्या हालत होगी ? व्यवहार में जितनी कुशलता बताते हो, उसका एक अंश भी मनुष्य जीवन को सफल बनानेवाले तत्त्वों की पहिचान में नहीं बिताते हो तो उसमें आपकी अज्ञानता कारणभूत है या लापरवाही ?

जिसे देव के स्वरूप को पहचानने की जरूरत नहीं लगती है, उसे साधु के स्वरूप को पहचानने की जरूरत कहाँ से लगेगी ? आज ऐसा जमाना आ गया है कि देव-गुरु और धर्म के विषय में कोई किसी को पूछता ही नहीं है । आज कई लोग धार्मिक क्रियाएँ भी रूढ़ि से करते हैं । वे क्रियाएँ आत्मा को छूती नहीं हैं ।

देव सेवा क्यों ? :–

ज्यादा समझ न पड़े तो भी इतना तो समझ लेना चाहिये कि देव तो वीतराग ही चाहिये और उसकी पूजा वीतरागता पाने के लिए करनी चाहिये । इसी प्रकार गुरु की सेवा के संबंध में भी इतना सामान्य ज्ञान तो प्राप्त कर लेना चाहिये ।

संसार में भटकते रहें, इस ध्येय से देव पूजा नहीं करनी है, बल्कि देव जिस पद को प्राप्त हुए हैं, उस पद को पाने के ध्येय से करनी चाहिये । उसी प्रकार गुरु की सेवा भी गुरु जैसा बनने के लिए करनी चाहिये ।

जिस प्रकार देव तत्त्व की सेवा संसार से छूटने के लिए और सिद्ध पद पाने के लिए करनी चाहिये उसी प्रकार गुरुतत्त्व की सेवा भी मोक्ष पाने के लिए करनी चाहिये । गुरु भी वे ही कहलाते हैं, जिन्होंने संसार छोड़ा है । वीतराग की आज्ञानुसार जो सिद्धि मार्ग में आगे बढ़ने के लिए सतत प्रयत्न कर रहे हैं । जो कोई भी उनके संपर्क में आते हैं, उसे वे मुक्ति मार्ग में जोड़ने के लिए ही प्रयत्न करते हैं ।

साधु संसार त्यागी हैं । वीतराग की आज्ञानुसार संयम का पालन करनेवाले हैं । शक्ति अनुसार मुक्ति-मार्ग के प्रचारक हैं । इसीलिए वे आपके लिए पूजनीय हैं या अन्य कोई ध्येय है ? दूसरा कोई ध्येय हो तो कहना ।

साधु के सत्कार के लिए उत्साही बनें । जैन, साधु के सहवास में आने के बाद साधु बनने के लिए प्रयत्न करेंगे या जैसे थे वैसे ही रहेंगे ? आपके उत्साह में यह बीज न हो तो जैसा परिणाम आना चाहिये, वैसा नहीं आएगा । सिर्फ रूढ़ि का ही पालन होगा ।

इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी साधु बन जाएंगें, परंतु साधुता को अच्छी मानोगे तो आपका दुन्यवी व्यवहार भी लोकोत्तर बन जाएगा ।

जैसे देव सच्चे चाहिये, वैसे सेवक भी सच्चें चाहियें । गुरु सच्चे चाहिये तो शिष्य भी सच्चें चाहियें । **श्री वीतराग देव और त्यागी गुरु मिलने के बाद संसार की तीव्र आसक्ति दूर न हो तो यह अपनी अपात्रता ही है । आपको जिस वस्तु का राग न हो, उस वस्तु का उत्सव भी कैसे कर सकते हैं ?**

देव-गुरु-धर्म का उत्सव :–

शास्त्रकार फरमाते हैं, अपने देव वीतराग होते हैं, गुरु त्यागी होते हैं और जैन विरागी होता है । जो वीतराग नहीं वह देव नहीं । जो सच्चे त्यागी नहीं वे साधु नहीं और जो विरागी नहीं वे जैन नहीं ।

हृदय में त्याग की भावना उसी का नाम विराग । जो वस्तु संसार में भटकाने वाली होने के कारण त्याज्य हो, उसके ऊपर जैन उपादेय बुद्धि से राग नहीं करता है ।

शक्ति व सामग्री न हो तो कदाचित् त्याग न कर सके, यह संभव है, परंतु उसमें उपादेयपने का राग तो नहीं होना चाहिये ।

वास्तविक रूप में देव का महोत्सव, गुरु का महोत्सव और धर्म का महोत्सव वे ही मना सकते हैं जो यह मानते हो कि वीतराग ही देव होते हैं, वीतराग की आज्ञानुसार त्याग करनेवाले ही गुरु होते हैं और जिसके हृदय में संसार के प्रति विराग हो, वे ही सच्चा जैन होते हैं । इसके सिवाय महोत्सव करनेवाले यदि मार्गाभिमुख न हो तो या तो वे रूढ़ि से महोत्सव मनाते हैं, या दंभ करते हैं या अन्य किसी इहलौकिक स्वार्थ सिद्धि के लिए मनाते हैं ।

आप लोगों में दंभ हो ऐसा तो मैं नहीं मानता हूँ, परंतु कई लोग रूढ़ि के वश होंगे ऐसा जरूर लगता है ।

मृत्यु का भय नहीं :–

जिनेश्वर देव का नाम देने से व्यवहार से भले ही जैन कहलाते होंगे, परंतु सच्चें जैन तो वे ही हैं जो वीतराग को ही देव मानते हो । वीतराग की आज्ञानुसार चलनेवाले निर्ग्रंथ को ही गुरु मानते हो और जिनाज्ञा की आराधना में ही धर्म मानते हो ।

इस प्रकार देव, गुरु और धर्म को माननेवालों में विरागभाव न हो, यह हो नहीं सकता । विराग के प्रति इतनी दृढ़ श्रद्धा हो वह जैन कहलाता है ।

शास्त्रकार फरमाते हैं कि ऐसा जैन मोहनीय कर्म के उदय के कारण विरति से दूर रहा हुआ हो तो भी मरकर अवश्य देव बनता है ।

देव, गुरु व धर्म के वास्तविक स्वरूप को माननेवाले जैन में ही जैनत्व होता है । ऐसी आत्मा को मौत का भय नहीं होता है । मरने के बाद उसकी गति वैमानिक देव से कम नहीं होती है ।

सच्चा विरागी अनीति व भयंकर पाप करनेवाला नहीं होता है । सच्चे विरागी को पाप का डर होता है और वह त्यागी बनने की भावना रखता है । सच्चा विरागी धर्म के आचरण के प्रति लापरवाह नहीं होता है । इस कारण उसकी दुर्गति नहीं होती है ।

सच्चे जैन को दुःख नहीं :–

वीतराग को देव माननेवाले, वीतराग की आज्ञा में रहनेवाले त्यागी को गुरु माननेवाले तथा हृदय से संसार-त्याग व संयम सेवन को धर्म माननेवाले में लक्ष्मी से भी दान का प्रेम ज्यादा होता है । विषय वासना के बजाय शील का प्रेम, खाने के बजाय तप का प्रेम अधिक होता है । अशुभ विचारों के बजाय सद्विचारों में उसका चित्त लगा होता है ।

ऐसा जीवन जीनेवाला इहलोक में दुःखी नहीं होता है । पूर्व के पापोदय से दुःख आ जाए तो भी वह दुःख उसकी शांति का भंग नहीं करता है । मरने के बाद भी उस आत्मा की दुर्गति नहीं होती है और अंत में वह सिद्धि पद को पाए बिना नहीं रहता है ।

आज इतना निश्चय कर लो कि देव तो वीतराग को ही मानना का, गुरु तो वीतराग आज्ञानुसार संसार त्यागी को ही मानना तथा जिसके हृदय में विराग भाव हो, उसी को जैन मानने का ।

देव की पूजा करनेवाले को अवश्य सिद्ध पद याद आना चाहिये । गुरु की सेवा करनेवाले को त्याग पसंद पड़ना चाहिये और जीवन में जैनत्व आया हो तो राग बुरा हैं और विराग अच्छा हैं । ऐसी बुद्धि अवश्य होती है ।

ऐसी आत्मा को जितना दान अच्छा लगता हैं, उतनी लक्ष्मी अच्छी नहीं लगती है । उस आत्मा को जितना शील अच्छा लगता है, उतना विषय सेवन पसंद नहीं पड़ता है । उस आत्मा को जितना तप अच्छा लगता है, उतना खाना-पीना पसंद नहीं पड़ता है । उस आत्मा को जितने सद्विचार अच्छे लगते हैं, उतने दुर्विचार अच्छे नहीं लगते हैं ।

ऐसी आत्मा का मनुष्य जीवन सफल हुए बिना नहीं रहता है । जो व्यक्ति अपने मनुष्य जीवन को सफल बनाना चाहता है, उसके लिए यही एक मार्ग है । इसके सिवा मानव जीवन को सफल बनाने का कोई उपाय नहीं है । सभी आत्माएँ इस मार्ग को प्राप्त कर परिणाम स्वरूप मुक्ति सुख प्राप्त करें, यही एक शुभाभिलाषा ।

17

अन्तर्दृष्टि खोलो

रहेमतपुर **माघ शुक्ला 9, वि.सं. 1994,**
दि. 09-02-1938, बुधवार

प्राणी मात्र के कल्याण की उत्कृष्ट भावना के फलस्वरूप महापुण्य उपार्जित करने के बाद अनंतज्ञानी बने परमात्मा तथा उन तारक परमात्मा की आज्ञा वहन करनेवाले अन्य महापुरुषों ने इस बात का निर्णय करके कहा है कि जब तक आत्मा को आत्मदृष्टि प्राप्त नहीं होती हैं, तब तक आत्मा का कल्याण होनेवाला नहीं है ।

आजकल बाह्य दृष्टि खूब बढ़ गई है । इस कारण **'मैं कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है ?'** इसका विचार ही नहीं आता है ।

'जो कुछ आँख के सामने है' उसी की साधना करना लगभग यह दृष्टि अधिकांश लोगों की हो गई है । जिनके पास थोड़ी बहुत दृष्टि है तो वे भी निश्चित ध्येयवाले नहीं हैं ।

जिसे साध्य का निश्चय नहीं है, वह कोई भी कार्य सिद्ध नहीं कर सकता है । **विवेक रहित आत्मा को पौद्‌गलिक सुख प्रदान करनेवाले पदार्थ भी सुख देने में समर्थ नहीं होते हैं ।** परंतु इस बात का निर्णय तभी हो सकता हैं, जब आप स्वयं विचार करोगे ।

अभी विचार नहीं करोगे तो एक दिन आपको विचार करना पड़ेगा । परंतु उस समय आप कुछ भी करने में असमर्थ बन जाओगे । इसीलिए ज्ञानियों ने यह विचार अंत समय में नहीं, लेकिन हमेशा करने को कहा है ।

पाप प्रति तिरस्कार :–

जो दुनिया आंख के सामने आती हैं, उसे हम प्रत्यक्ष देखते हैं । **'संपत्तिवाले सुखी हैं और संपत्ति हीन दुःखी हैं अथवा साधन संपन्न**

सुखी हैं और साधनहीन दुःखी हैं' ऐसा एकांत नियम नहीं है । संपत्तिहीन व साधनहीन होने पर भी कई सुखी होते हैं और संपत्तिमान तथा साधन-संपन्न होने पर भी कई दुःखी होते हैं । परंतु यह बात अंतर्दृष्टिवाले बनोगे तब ही ख्याल में आ सकेगी । इसीलिए ज्ञानी अन्तर्मुख बनने की प्रेरणा देते हैं ।

भूखे व्यक्ति को देखकर जितनी दया आती है, उतनी दया पापी को देखकर नहीं आती है । स्वयं के पाप की जिसे दया नहीं आती हो, उसे दूसरों के पाप की दया कहाँ से आएगी ?

एक व्यक्ति भूखा होने पर भी समभाव में स्थिर रहकर मर जाता हैं और दूसरा व्यक्ति पाप करते हुए दुर्भाव में मर जाता है । इन दोनों में खराब हालत किसकी होनेवाली है ?

दुर्भाव में मरनेवाले की ।

पूर्वकाल के उत्तम पुरुषों की यह विशेषता थी कि उन्हें भूखे रहने में जितना दुःख नहीं होता था, उतना दुःख पाप करते समय होता था । भूख के दुःख के समय तो वे अपना कल्याण साध लेते थे ।

आज अधिकांश लोगों में पाप प्रति तिरस्कार नहीं है । इस कारण पापी की दया प्रायः नष्ट हो गई है । आज दुन्यवी दृष्टि से जो लोग अच्छे माने जाते हैं, उनके पापों की गिनती की जाय तो पार नहीं आएगा । फिर भी आपको उनके जैसा बनने की इच्छा होती है, परंतु साधु को देखकर साधु बनने की इच्छा नहीं होती है ।

त्यागी, संयमी और पैदल चलनेवालो को देखकर अच्छे-अच्छे लोगों को दया आ जाती है, परंतु अनेक पापाचरण कर दुन्यवी दृष्टि से बड़े कहलानेवालो की दया नहीं आती हैं, क्योंकि **'दुःख का कारण पाप और सुख का कारण धर्म है'** यह बात कबूल नहीं की है ।

ऐसे तो पाप के अनेक प्रकार हैं, परंतु उपरोक्त वस्तु स्थिति को समझाने के लिए पाप के दो प्रकार कह सकते हैं ।

एक वह पाप है जो भौतिक सुख-सामग्री की प्राप्ति में अंतराय रूप बनता है ।

दूसरा वह पाप है जो भौतिक सुख-सामग्री की अप्राप्ति में दुःख पैदा करता है ।

पहले प्रकार के पापोदय में आत्मार्थी को भय रखने की आवश्यकता नहीं है, परंतु उस समय लोभ रूप दूसरे पाप का उदय नहीं होता है ।

सामग्री के अभाव में या अपूर्ण सुख में अंदर दुःख पैदा करानेवाली चीज, तृष्णा है ।

पाप के उदय से भले ही सुख के साधन न मिले अथवा प्राप्त साधन नष्ट हो जाय । परंतु जिस पाप का उदय दुन्यवी पदार्थों के लोभ को बढ़ानेवाला है, वह तो बिल्कुल नहीं चाहिये । **वास्तव में पौद्‌गलिक इच्छा को पूर्ण करने की इच्छा ही बड़े दुःख का कारण है ।**

पौद्‌गलिक इच्छाओं में आनंद पाना, यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है । पौद्‌गलिक पदार्थों की इच्छापूर्ति में सुख मानना यह मिथ्यादृष्टि का ही फल है । पौद्‌गलिक पदार्थों की इच्छा पूर्ति की इच्छा बहिर्दृष्टि जीव को ही होती है । बहिर्दृष्टि आत्मा मिथ्यादृष्टि ही होती है । मिथ्यादृष्टि आत्मा सुखी नहीं, बल्कि दुःखी होती है ।

जब तक आत्मा बहिर्दृष्टि रहेगी तब तक आत्मा सम्यग्‌दृष्टि नहीं बन सकेगी । सम्यग्‌दृष्टि के अभाव में आत्मा सच्चे सुख को प्राप्त नहीं कर सकती ।

अयोग्य को उपदेश का निषेध :–

शास्त्रकार कहते हैं – जगत् के जीवों की अन्तर्दृष्टि खुल जाय वैसा प्रयत्न करो, क्योंकि अन्तर्दृष्टि के अभाव में सच्चे उपकार के लिए किया गया प्रयत्न भी निष्फल ही जाता है । उल्लू को दिखाई दे, यह ताकत सूर्य में भी नहीं है ।

सूर्य के उदय में लोगों को आनंद होता है किंतु उल्लू को दुःख होता है । इसी प्रकार कई आत्माओं को सच्चे साधु का एक एकांत आत्महितकर उपदेश पसंद नहीं पड़ता है । उन आत्माओं को सुखी बनाने की ताकत अनंतज्ञानी परमात्मा में भी नहीं है । अतः अन्तर्दृष्टि खुल जाय वैसा प्रयत्न करना चाहिये ।

जिसकी भवितव्यता अच्छी होती हैं, उसी की अन्तर्दृष्टि खुलती है । निकट भविष्य में जिसका कल्याण होनेवाला हो, उसी को अन्तर्दृष्टि खोलनेवाला उपदेश पसंद पड़ता है । शास्त्रकारों ने अयोग्य-अपात्र को उपदेश देने का

निषेध किया है । अयोग्य आत्माओं को चाहे जितना उपदेश दिया जाय, उसे लाभ होने के बजाय नुकसान ही होता है ।

जगत् में अधिकांश लोग ऐसे हैं जो सच्चे साधु का उपदेश सुनते ही नहीं हैं । दूसरा रूढ़िचुस्त वर्ग सुनता है लेकिन एक कदम भी आगे नहीं बढ़ता है ।

तीसरा वर्तमान युग का पंडितवर्ग है जो सुनता तो है, लेकिन दूसरों को उपदेश देने के लिए अथवा दुनिया में अपने पांडित्य का प्रदर्शन करने के लिए सुनता है ।

धर्म की आराधना के लिए ये तीनों वर्ग बेकार हैं । हमें तो ऐसा चौथा वर्ग चाहिये, जिसकी अन्तर्दृष्टि खुल गई हो अथवा खुलने की तैयारी में हो ।

सभा में हम उसी वर्ग को देखते हैं । सभा में हमें तभी विशेष आनंद आता है जब यह चौथा वर्ग श्रोता के रूप में हो । यह वर्ग न हो तो हमें बोलने में विशेष आनंद नहीं आता है ।

अर्थी के पास साधन-संपन्न दाता खिलता है । उसी प्रकार योग्य श्रोता मिले तो बोलनेवाले की शक्तियाँ भी बढ़ जाती हैं ।

धर्मश्रवण की सार्थकता :–

आज आप कौनसी बात सुनने के लिए आए हो ?

सभा में से :– धर्म की ।

पूज्यपादश्री – धर्म की ही बात सुनने के लिए आए हो तो बहुत खुश होने जैसा है । साधु के पास धर्मश्रवण के लिए ही जाना चाहिये । धर्म का श्रवण आत्म-कल्याण के लिए करना चाहिये ।

जहां आत्म-कल्याण की बात आएगी, वहाँ त्याग की बात आएगी ही । धर्मश्रवण के लिए आए आत्म-कल्याण के साधक को त्याग की बात पसंद न पड़े, यह नहीं हो सकता ।

'मैं धर्म श्रवण के लिए जाऊंगा तो मेरी त्यागवृत्ति विकसित होगी ।' यदि इसी ध्येय से आप आए हो तो अच्छी बात है । परंतु यह ध्येय है या नहीं ? इसकी जांच आपको ही करनी चाहिये ।

धर्म की बात में घर छोड़ने की बात आएगी, परंतु लक्ष्मी बढ़ाने की

बात नहीं होगी, बल्कि उसका सदुपयोग करने की बात आएगी । क्या यह बात आपको पसंद है ?

अन्तर्दृष्टि खुले बिना अथवा खुलने की योग्यता प्राप्त हुए बिना यह बात पसंद पड़नेवाली नहीं है ।

अतः मुख्य बात यही हैं कि अन्तर्दृष्टि खोलने के लिए प्रयत्नशील बनो ।

रोज विचार करें :–

अन्तर्दृष्टि खोलने के लिए प्रतिदिन प्रातःकाल में थोड़े समय के लिए यह विचार करें कि–मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मैं क्या करता हूँ ? और वर्तमान में रहा मेरा आचरण मुझे कहाँ ले जाएगा ? इन चार बातों का प्रतिदिन विचार करो ।

इन बातों पर विचार करते-करते एक दिन अन्तर्दृष्टि खुलने लगेगी और बहिर्दृष्टि दूर हो जाएगी । उसके बाद सद्गुरु की खोज करने की स्वतः इच्छा जागृत होगी ।

अन्तर्दृष्टि खुलने के बाद वीतराग परमात्मा की सेवा किए बिना चैन नहीं पड़ेगा ।

'मैं कौन हूँ ?' इस पर विचार करते हुए आपको मालूम पड़ेगा कि लोग मुझे जिस नाम से बुलाते हैं, मैं वह नहीं हूँ बल्कि कोई दूसरा ही हूँ ।

'मैं कहाँ से आया हूँ ?' इसका विचार करते हुए भवपरंपरा का ख्याल आएगा ।

'मैं क्या कर रहा हूँ ?' का विचार करने पर ख्याल आएगा कि मैं अपने आपको ही खत्म कर रहा हूँ ।

'मुझे कहाँ जाना है ?' इसका विचार करते हुए दुर्गति दिखाई देगी । अतः आत्मा सावधान बनेगी ।

इन चार बातों पर रोज विचार करना चाहिये **'इनका विचार करोगे तो एक दिन अन्तर्दृष्टि खुल जाएगी ।'**

'मैं कौन ?' इसका अभी विचार करोगे तो जवाब मिलेगा **'मैं कौन ?'** मैं शरीर नहीं, लेकिन आत्मा हूँ । **शरीर और आत्मा एक नहीं,**

बल्कि भिन्न हैं ।' इसी कारण जो शरीर का सुख है, वह आत्मा का सुख नहीं है । शरीर के सुख में आत्मा को सुख हो, ऐसा नियम नहीं है । शरीर के दुःख में भी आत्मा सुखी हो सकती है । शरीर के दुःख में आत्मा को दुःखी नहीं करना चाहिये ।

आत्म-सुख के लिए शरीर का सुख छोड़ना पड़े तो छोड़ देना, क्योंकि मैं शरीर नहीं हूँ ।

'शरीर और आत्मा भिन्न है, मैं शरीर नहीं लेकिन आत्मा हूँ' इतना भान हो जाय तो आपकी कार्यशैली स्वतः बदल जाएगी ।

'मैं कहाँ से आया हूँ ?' इसकी कल्पना अपनी वर्तमान स्थिति से कर सकते हैं । किसी भी गति से मैं आया, लेकिन पूर्वभव में कुछ पुण्यकर्म करके आया हूँ । इसीलिए मुझे यह श्रेष्ठ भव मिला है तथा अन्य जीवों की अपेक्षा श्रेष्ठ सामग्री प्राप्त हुई है ।

'मेरा वर्तमान आचरण कैसा है ? अब यही देखना है ।' यहाँ से मरकर कहाँ जाना है ? इसका आधार उसी पर है । सद्गति में ही जाने की इच्छा होने पर भी वर्तमान जीवन शैली के आधार पर ही वह स्थान निश्चित होनेवाला है । इस दृष्टि से भविष्य आपके ही हाथ में है ।

आप जो प्रवृत्ति करते हैं, वह भविष्य का विचार करके करते हो ? इस विचार पर आपको रुकना होगा ।

यदि आप इतना निश्चय कर लो कि–**'अभी से मैं जो भी कार्य करूंगा, वह भविष्य का विचार करके ही करूंगा ।'** जिस विषय में मुझे ज्ञान नहीं होगा, उस विषय में मुझ से अधिक ज्ञानी को पूछकर ही भविष्य न बिगडे ऐसी प्रवृत्ति करूंगा ।

'इस प्रवृत्ति का भविष्य में अच्छा परिणाम आएगा या नहीं ?' यह सोचे बिना मैं कोई भी प्रवृत्ति नहीं करूंगा ।

इतना भी निश्चय हो जाय तो मनुष्य की जिंदगी में परिवर्तन आए बिना नहीं रहेगा ।

भूतकाल तो नष्ट हो गया है, उसके आधार पर वर्तमान का निश्चय हो चुका हैं, अतः उसमें तो कुछ भी परिवर्तन होनेवाला नहीं है, परंतु भविष्य तो अपने हाथ में है, अतः उसे सुधारने के लिए प्रयत्न करना चाहिये ।

जीवन का जुआँ न खेले :–

आज ऐसे अनेक लूले-लंगड़े व दीन-दु:खी हैं जो रो-रोकर मर गए, परंतु उनकी स्थिति में सुधार नहीं हुआ ।

ज्ञानी तो वर्तमान काल के दु:खी को एक ही सलाह देते हैं **'तू रो मत'** और सुखी को सलाह देते हैं–**'तू हँस मत ।'**

पाप के उदय से दु:ख की और पुण्य के उदय से सुख की सामग्री मिलती है । पुण्य-पाप का यह सिद्धांत निश्चित हो जाय तो **'व्यापार में अनीति करनी चाहिये'** यह मान्यता नहीं होगी । **व्यापार में अनीति करनी चाहिये । ऐसा माननेवाले वास्तव में पुण्य-पाप को मानते ही नहीं हैं ।**

वर्तमानकाल, हमारे भूतकाल की कार्यशैली का ही परिणाम है । इसका ध्यान नहीं होने के कारण ही वर्तमानकाल में शांति नहीं है । **आज व्यापारी सटोरिया बन गए हैं उसी प्रकार आप भी जीवन का सट्टा खेल रहे हो । जीवन का सट्टा खेलना उचित नहीं है ।**

जीवन कब खत्म होगा, इसका पता नहीं, फिर भी इस बात विचार नहीं करते हो, यह सट्टा नहीं तो क्या है ?

भविष्य अपने हाथ में होने पर भी गलत प्रवृत्ति कर अपने भविष्य को बिगाड़ना क्या समझदारी का लक्षण है ?

भविष्य की ओर नजर करनेवाले चक्रवर्ती भी साधु बन गए । एक क्षण में उन्होंने छः खंड की सुख-सामग्री छोड़ दी । उन्होंने सोचा, **'इस सुख-समृद्धि में भविष्य का विचार नहीं किया तो भविष्य खतरनाक है ।'**

वीतराग परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट एकांत कल्याणकारी बातें भी आज पसंद नहीं पड़ती है, क्योंकि आत्मा को भविष्य का विचार नहीं हैं ।

कोई भी प्रवृत्ति करते समय भविष्य का विचार करना तथा स्वयं को मालूम न पड़े तो ज्ञानी को पूछकर प्रवृत्ति करना ये दो नियम जीवन सुधार के लिए आवश्यक हैं ।

'भविष्य का विचार पैदा हो तो भयंकर पापात्मा भी सुधरती है'
(इस विषय पर पूज्यश्रीने यहाँ पर सिकंदर बादशाह का उदाहरण विस्तृत से दिया था ।)

जीवन कैसे जीए ? :–

आज के अधिकांश लोग आत्मा का विचार ही नहीं करते हैं । **'पर भव में मेरा क्या होगा ?'** इसका विचार किए बिना सभी पाप-प्रवृत्ति करते रहते हैं । इस भव के अंत के साथ अपना अंत आ जाने वाला हो तब तो विचार न करे तो भी चल सकता परंतु यहां से मरकर परलोक में जाना है । यह निश्चित बात है । अतः आत्मा को पाप से भारी बनाते हुए कुछ विचार करना जरूरी है ।

अंत समय में सब यहां रह जाएगा, यह देख दुःखी होना इसके बजाय तो पहले से ही सावधान बनकर समाधिपूर्वक मृत्यु प्राप्त हो, वैसा जीवन जीने में ही बुद्धिमत्ता है ।

जिसे भविष्य का विचार नहीं है और आत्मा का ध्यान नहीं है, ऐसे व्यक्ति में साधु बनने की तो योग्यता दूर रही, एक सद्गृहस्थ बनने को भी योग्यता नहीं होती है ।

झूठ बोल कर व माया प्रपंच कर गृहस्थाश्रम चलाना क्या बुद्धिमत्ता के लक्षण हैं ? दुन्यवी सुखों के प्रति विराग भाव तथा आत्म-सुख के प्रति जिसे रागभाव है वह कदाचित् साधु नहीं बन सका तो भी सद्गृहस्थ तो अवश्य बनेगा ।

सभी साधुता प्राप्त कर अपना कल्याण करे यह इच्छा साधु को अवश्य होती है । परंतु अयोग्य-अपात्र को साधु बनाने की जल्दबाजी सच्चे साधु नहीं करते हैं ।

आप योग्य बनोगे तो ही आपका कल्याण होगा ।

भविष्य के परिणाम का विचार करने से ही योग्यता प्राप्त होती है । **'मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मेरा कर्तव्य क्या है ? यहाँ से मरकर कहाँ जाऊँगा ?'** इन चार बातों का रोज विचार करो, इससे आपकी अंतर्दृष्टि खुलेगी ।

अंतर्दृष्टि खुलने के बाद पाप त्याग व धर्म-सेवन का मन स्वतः हो जाएगा । आज जो मन पाप की ओर ढला हुआ है, वह धर्म की ओर ढलने लगेगा । इतना परिवर्तन होने के बाद आपका कल्याण हथेली में है ।

सबकी अंतर्दृष्टि खुले और सभी का कल्याण हो, यही एक शुभाभिलाषा ।

18

आत्मा को पहचानो

हेलगाँव **माघ शुक्ला 10+11, वि.सं. 1994,**
दि. 10-02-1938, गुरुवार

जिस मार्ग की आराधना करने से आत्मा सर्वथा दुःख मुक्त होकर शाश्वत सुख की भोक्ता बन सकती है, ऐसे धर्म मार्ग को बतानेवाले, अनंतज्ञानी श्री वीतराग परमात्मा ने फरमाया है कि अन्य भवों की अपेक्षा मनुष्य भव सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि वास्तविक कल्याण के लिए धर्म मार्ग की संपूर्ण साधना मनुष्य भव में ही हो सकती है ।

पुण्य के उदय बिना उत्तम मनुष्य-भव की प्राप्ति नहीं होती है, अतः जिसे मनुष्य भव प्राप्त हुआ है, वे आत्माएँ अवश्य भाग्यशाली हैं ।

उत्तम मनुष्य-भव को प्राप्त करने के बाद अब यह सोचना है कि इस जन्म को सफल कैसे किया जाय ?

मनुष्य भव उत्तम साधना का एक साधन मात्र है । उच्च कोटि के साधन मिलने के बाद उच्च कोटि की साधना हो तभी उन साधनों की प्राप्ति सफल है । उच्च कोटि के साधन मिलने के बाद उन साधनों का सदुपयोग न कर दुरुपयोग करें तो यह हमारा बहुत बड़ा दुर्भाग्य ही होगा ।

सफलता कब ? :–

हमें सर्वश्रेष्ठ मनुष्य जन्म मिला है । अतः इस जन्म का दुरुपयोग न कर सदुपयोग हो, इसके लिए सावधान बनना चाहिये ।

मनुष्य जन्म की सफलता धर्ममार्ग की साधना को आभारी है । इसलिए मनुष्य जन्म को सफल बनाने के लिए धर्म मार्ग की साधना में प्रयत्नशील बनना चाहिये ।

दुन्यवी वस्तुओं के आकर्षण से दूर रहनेवाले और आत्म-भान रखनेवाले ही धर्म मार्ग की वास्तविक साधना कर सकते हैं ।

आत्म कल्याण की साधना के लिए प्रयत्न करने में ही इस भव की सफलता है ।

अनंतज्ञानी महापुरुषों ने आत्म-कल्याण की साधना के लिए प्रयत्न करने का निर्देश किया है, उसी प्रकार उन्होंने आत्म-कल्याण की साधना का मार्ग (उपाय) भी बताया है । उस मार्ग का सही रूप से अनुसरण करने पर ही कल्याण हो सकता है । आत्म-कल्याण में बाधक प्रवृत्ति करने से तो वह भव लाभदायक बनने के बजाय हानिकारक ही सिद्ध होता है ।

आत्म-कल्याण में ही अपना वास्तविक कल्याण है । आत्म-कल्याण करनेवाला सर्व कल्याण का भोक्ता बन जाता है और आत्मा का अकल्याण करनेवाला अपने दुःख में ही अभिवृद्धि करता है ।

साधु जीवन का स्वीकार करें :–

आत्म-कल्याण के लिए उपकारी महापुरुषों ने फरमाया है, **'आत्मा को पहिचानो, आत्म-हित की चिंता करो तथा आत्मा का मूल स्वभाव प्रकट हो, ऐसी निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति करो ।'**

आत्म-कल्याण की साधना के लिए पाप से निवृत्ति और धर्म में प्रवृत्ति आवश्यक है ।

मन, वचन और काया से करण, करावण और अनुमोदन द्वारा पाप से निवृत्त होना और मन, वचन और काया के योगों को करण, करावण और अनुमोदन द्वारा धर्म प्रवृत्ति करना इसी में उत्तम मानव भव की सफलता है ।

उपकारी महापुरुष फरमाते हैं कि इस भव को सफल बनाने के लिए संसार से विरक्त और मोक्ष की कांक्षावाले बनकर साधु जीवन जीने के लिए तत्पर बन जाना चाहिये, क्योंकि सच्चे साधुपने को छोड़कर संपूर्ण निष्पाप व धर्ममय जीवन अन्य कोई नहीं है । अर्थात् इस संसार में जितने जीव विद्यमान हैं, उनमें साधुजीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है । ऐसे श्रेष्ठ जीवन की धारक आत्माएँ ही श्रेष्ठ आत्माएँ हैं ।

गृहस्थ जीवन में सावधानी :–

सभी आत्माओं के लिए यह जीवन संभव नहीं है । अतः जो आत्माएँ

संपूर्ण निष्पाप व धर्ममय जीवन जीने में असमर्थ हो वे संपूर्ण निष्पाप धर्ममय जीवन के अर्थी बनकर अल्प पापत्याग और अल्प धर्म-सेवनमय गृहस्थ जीवन जी सकते हैं ।

निष्पाप व धर्ममय जीवन जीने के इच्छुक गृहस्थ का जीवन भी अच्छा जीवन हो जाता है, क्योंकि संसार त्याग की भावना होने के कारण संसार में रहते हुए भी वे पापभीरू और धर्म-सेवन के रसिक होते हैं । आज अधिकांश लोगों में पाप का रस और धर्म-सेवन में भय दिखाई देता है । इस कारण वे कुलाचार आदि के कारण जो कुछ थोड़ी बहुत धर्म क्रियाएँ करते हैं, परंतु उन धर्मक्रियाओं से जो लाभ होना चाहिये, उससे वंचित रह जाते हैं ।

आत्म-कल्याण के लिए पाप का भय और धर्म-सेवन में रस बहुत जरूरी है । पापभीरू व धर्मरसिक आत्मा कोई संयोगवश साधु न बने तो भी सद्गृहस्थ तो अवश्य बनती है ।

गृहस्थ जीवन को भी श्रेष्ठ बनाने के लिए हिंसा के त्याग में शक्य प्रयत्नवाला बनना चाहिये । असत्य का त्याग करना चाहिये । मालिक की अनुमति बिना पराई वस्तु लेने का त्याग करना चाहिये ।

इन्द्रियों के स्वेच्छाचार पर नियंत्रण रखकर विषय वासना पर कंट्रोल रखना चाहिये । पर-स्त्री का त्याग और स्व-स्त्री में संतोषी बनना चाहिये ।

दुन्यवी पदार्थों की ममता घटाने का प्रयत्न करना चाहिये । गृहस्थ अवस्था में रहकर साधुजीवन जैसा निष्पाप और धर्ममय जीवन जीना तो संभव नहीं है । परंतु पाप त्याग व धर्म-सेवन का यथाशक्य प्रयत्न किया जाय तो भी कुछ अंश में मनुष्य भव की प्राप्ति को सार्थक किया जा सकता है ।

गृहस्थावस्था में रहकर जो यथाशक्य पापत्याग व धर्ममय जीवन के लिए प्रयत्न करते हैं, तब संपूर्ण निष्पाप व धर्ममय जीवन की प्राप्ति भी सुलभ बनती है और निकट भविष्य में ही आत्मा अपना कल्याण साध सकती है ।

महा पुण्योदय से प्राप्त मानव जीवन को सफल बनाने के लिए यही एक अमोघ उपाय हैं । सभी इस उपाय का अनुसरण कर अपनी आत्मा का कल्याण करें यही एक शुभाभिलाषा !

19
आत्म-धर्म

मसूर **माघ शुक्ला 10, वि.सं. 1994,**
दि. 10-02-1938, गुरुवार

अनंतज्ञानी अनंत उपकारी श्री जिनेश्वर भगवंत फरमाते हैं कि मोक्ष-ध्येय से धर्म साधना करना, यही कल्याणकारी है ।

देवगति की अपेक्षा मनुष्यगति ऊंची है । यह आप लोग जानते हैं । परंतु मनुष्यगति ऊंची क्यों है ? यह जानने के लिए प्रयत्न न करो तो उस उच्च गति के योग से जो फायदा होना चाहिए, वह नहीं होता है और इसके फलस्वरूप सद्गति में से मरकर दुर्गति में उत्पन्न होना पड़ता है ।

सद्गति में से मरकर दुर्गति में नहीं जाना हो और सद्गति पाते-पाते यावत् मोक्ष में जाना हो तो उसका एक मात्र उपाय धर्म-सेवा ही है ।

आत्मा का स्वभाव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्रमय है, उस स्वभाव को प्रकट करना, उसी का नाम धर्म है । आत्म-स्वभाव को विकसित करे, उसे आत्म-धर्म कहते हैं । आज अधिकांश लोग आत्म-धर्म को भूल गए हैं और पर-धर्म में मोहित हो गए हैं ।

पर वस्तु का मोह अपार है और आत्मा का ख्याल भी नहीं है । इस स्थिति में आत्म-स्वभाव किस प्रकार खिल सकता है ? ऐसी दशा में तो आत्म-स्वभाव पर और अधिक आवरण ही आएगा ।

जब तक आत्मा अपने स्वभाव को विकसित न करे और पर वस्तु का मोह नहीं छोड़े, तब तक वास्तविक कल्याण होनेवाला नहीं है । अतः जिन-जिन उपायों से आत्म-स्वभाव प्रकट हो, उन उपायों के लिए प्रयत्न करना चाहिये । आत्म-स्वभाव के प्रकटीकरण का श्रेष्ठ प्रयत्न इसी मनुष्य भव में हो सकता है अतः इस भव में उस प्रयत्न के लिए सावधान बनना चाहिये ।

मार्ग की उपेक्षा :–

पर वस्तु का मोह छोड़ना सरल कार्य नहीं है, परंतु ऐसा किए बिना छुटकारा नहीं है । अतः पर वस्तु के मोह से छूटने के लिए निरंतर प्रयत्न करते रहना चाहिये । उपकारी महापुरुषों ने हमें आत्मभान कराया है । मोह ने अपने को कितना नुकसान पहुँचाया है, यह भी ज्ञानियों ने बतलाया है ।

कोई व्यक्ति हमें आगे आने वाले खड्डे से सावधान करे फिर भी हम आँख बंद कर चलें और खड्डे में गिर जाएँ, हड्डी टूट जाए, तो उसमें खड्डा बतानेवाला क्या कर सकता है ?

इसी प्रकार ज्ञानियों ने हमें मार्ग बताया परंतु हम विपरीत ही चलें तो ज्ञानी क्या करे ?

दुर्गति से बचने का, यावत् जन्म-मरण के जंजाल से मुक्त होने का मार्ग ज्ञानियों ने बतलाया है, परंतु उस मार्ग के सेवन में आज अत्यधिक उपेक्षा हो रही है । यह उपेक्षा भाव नहीं छोड़ेंगे तब तक **'मोह छूटता नहीं है'** इस प्रकार कहने का कोई अर्थ नहीं है ।

श्री जिनमंदिर, उपाश्रय, पाठशाला आदि धर्मस्थान दुन्यवी वस्तुओं का मोह दूर करने के लिए और आत्म-स्वभाव के प्रकटीकरण के लिए हैं । उन स्थानों में जाकर भी हम दुन्यवी पदार्थों का राग बढ़ाएँ तो हम उन पवित्र स्थानों की आशातना ही करते हैं ।

श्री जिनेश्वर देव के मंदिर में जाकर जिनेश्वर भगवंत की सेवा करके यही भावना करें कि हे भगवान् ! आप वीतराग हो, मैं रागी हूँ । मुझे वीतराग बनना है, इसीलिए तेरी सेवा में आया हूँ । आपके दर्शन व पूजन के योग से मुझ में वीतराग भाव प्रकट हो यही मैं चाहता हूँ । आपकी आत्मा पर के संग से सर्वथा मुक्त बनी, इसी प्रकार मेरी आत्मा भी पर के संग से सर्वथा मुक्त बने, यही मेरी भावना है । जैसे आप हो, वैसा मैं बनना चाहता हूँ । आपके जैसा बनने के लिए ही मैं आपकी शरण में आया हूँ ।

``आप ही मेरे आधार हो... आपकी शरण स्वीकार कर मैं आपकी आज्ञानुसार जीवन जीना चाहता हूँ । आपकी पूजा के योग से मुझ में आपकी आज्ञा पालन का सामर्थ्य पैदा हो, यही मैं चाहता हूँ ।

आपकी आज्ञा के अनुसरण सिवाय मेरी कोई इच्छा नहीं है, क्योंकि आपकी आज्ञा के अनुसरण में सर्व का कल्याण रहा हुआ है । ऐसी श्रद्धा मेरी आत्मा में प्रकट हुई है ।''

श्री जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा के सामने आँखें स्थिर कर मन को एकाग्र कर इस प्रकार की भावना करनी चाहिये परंतु अंतर में इस प्रकार की भावना पैदा होना भी अत्यंत कठिन है । आत्म-स्वभाव की पहचान हो और आत्म-स्वभाव को विकसित करने की भावना जगे तो यह भावना पैदा हो सकती है । इसके लिए **'पर वस्तुएँ आत्मा से भिन्न हैं'** यह भाव आना चाहिये ।

प्रतिदिन परमात्मा की पूजा इस भावपूर्वक करें तो धीरे-धीरे मोह का जोर कमजोर हो सकता है । इस प्रकार की भावना के साथ प्रभु के दर्शन-पूजन करने के बाद गुरू के पास आए तो उपाश्रय भी मोह को मारने का स्थान बन सकता है । इस भावनावाला सुगुरू और कुगुरू को जल्दी पहचान सकता है । कुगुरू तो इन आत्माओं से डरते हैं । जबकि सुगुरू इन आत्माओं को देखकर प्रसन्न होते हैं । वे **'जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा क्या है ? उसका पालन कैसे हो सकता है ?'** उसी का उपदेश देते हैं ।

उपाश्रय में से कौन सी ध्वनि निकलती है ? आत्म-स्वभाव को प्रकट करने की ही न ! इससे विपरीत ध्वनि निकले तो समझना चाहिये कि उपाश्रय में रोग फैल गया है । वह जल्दी बाहर निकले और दूसरे किसी को उसका चेप नहीं लग जाय, उसके लिए सावधानी आवश्यक है ।

उपाश्रय में आने पर आत्म-कल्याण की बातें सुनाई देती हैं और आत्म-कल्याणकर महापुरुषों के दर्शन होते हैं । उसके योग से आत्मा को प्रेरणा मिलती हैं और अपने सत्त्व को विकसित करने की भावना जागृत होती है । उपाश्रय में दुन्यवी पदार्थों का मोह बढ़ानेवाली बातें नहीं होती हैं । मात्र आत्म कल्याण की ही बातें होती हैं, तभी उपाश्रय में आनेवाले के मोह पर प्रहार होता है ।

पाठशाला-मोहनाशक स्थान–

इसी प्रकार पाठशाला में भी आत्म-कल्याण का ही शिक्षण मिलना चाहिये । पाठशाला का शिक्षण जिनेश्वर देव की आज्ञा की आराधना में

सहायक होना चाहिये । पाठशाला से धर्म क्रिया में रस बढ़ना चाहिये । धर्म-क्रिया के प्रति आदर भाव बढ़ता जाय, वैसी योजना पाठशाला में होनी चाहिये, तभी पाठशाला मोह को मारने का साधन बन सकती है । **धर्म-स्थान तो मोह को मारने के साधन हैं, परंतु आज कई लोग इन साधनों का उपयोग मोह को पुष्ट करने में कर रहे हैं ।**

आपको आर्यदेश में मनुष्य भव मिला है । जैन के रूप में श्रेष्ठ कुल मिला है । सुदेव की पूजा का योग स्वाभाविक मिला है । बिना-प्रयत्न किए भी कभी-कभी सुगुरू का योग मिल जाता है । यह कोई कम सामग्री नहीं है । परंतु इस सामग्री की उत्तमता आपके हृदय में बसी नहीं है ।

सुदेव, सुगुरू और सुधर्म की आराधना करने के लिए जितनी उच्चतम सामग्री आपको मिली है, उतने आप अधिक भाग्यशाली हैं, परंतु यह बात अभी तक आपके दिमाग में उतरी नहीं है ।

धनवान, पुत्रवान, सत्तावान तथा कीर्तिवाले को ही न ! अपनी यह दृष्टि बदलनी होगी । यद्यपि ये सब चीजें भाग्य बिना नहीं मिलती हैं, परंतु वह भाग्य ही इच्छनीय है, ऐसा नहीं है । श्रेष्ठ भाग्य तो वह है जिसके प्रभाव से सुदेव, सुगुरू और सुधर्म की आराधना करने की सामग्री प्राप्त होती है । आराधना की सामग्री के साथ लक्ष्मी आदि की प्राप्ति को सोने में सुगंध कह सकते हैं, परंतु सिर्फ **'लक्ष्मी प्राप्ति का भाग्य इच्छनीय नहीं है ।'**

उत्तम आत्माएँ तो चाहती हैं–**'जैनत्व रहित चक्रवर्तीपना भी नहीं चाहिये तथा दरिद्रपने के साथ जैनत्व की प्राप्ति भी मंजूर है ।'**

उन्हें चक्रवर्तीपने से भी जैनपने की कीमत अधिक है ।

'जैनत्व की प्राप्ति होती हो तो दरिद्रदशा भी अच्छी है, परंतु जैनत्व रहित चक्रवर्तीपना भी नहीं चाहिये ।' यह वृत्ति मन में आनी चाहिये । यह वृत्ति तभी आ सकती है, जब आपकी भाग्यशालीपने की कल्पना बदलेगी । 'कल्पना बदलेगी तो उत्तम सामग्री को सफल बनाने में देर नहीं लगेगी ।'

ऐसा कोई प्रयत्न किए बिना सिर्फ बोलते रहो कि मेरा मोह छूटता नहीं है–तो इससे कोई फायदा नहीं है । मोह को दूर करने की बात करने

के पहले मोह को दूर करने की सच्ची वृत्ति पैदा करो । मोह को दूर करने की बात करने वाले बहुत हैं, परंतु मोह को दूर करने की वृत्तिवालें बहुत कम हैं ।

मोह को दूर करने की वृत्ति नहीं होने के कारण ही आज अनेको ने मोह को मारने के स्थान को मोह को बढ़ानेवाला बना दिया है ।

सच्चा जैन कौन ?

मनुष्य भव कीमती है, परंतु इसकी कीमत कितने को है ? आपको कीमती वस्तु मिली हैं तो उसकी कीमत करना सीखो । कीमती वस्तु का सदुपयोग कर महान लाभ प्राप्त करोगे तो बुद्धि का सदुपयोग माना जाएगा ।

मोह को मारने की वृत्ति न हो तो यह भव व्यर्थ चला जाएगा । आपका भव निष्फल न जाय, यही सुगुरू चाहते हैं और इसी कारण वे त्याग का उपदेश देते हैं ।

अनंतज्ञानी द्वारा दिया त्याग का उपदेश जिसे पसंद नहीं, वह कदाचित् भगवान की पूजा करता हो, गुरू का सामैया करता हो अथवा अन्य कई धर्म क्रियाएँ करता हो तो भी वह सच्चा जैन नहीं है ।

सच्चा जैन तो वह है जिसे अनंतज्ञानी जिनेश्वर देव द्वारा कही गई प्रत्येक बात पसंद पड़ती हो और उन तारकों की आज्ञानुसार शक्य आचरण करने में लापरवाह नहीं हो ।

पौद्‌गलिक वस्तुओं का मोह, आत्मा को अनेक पापों से जोडता है । हिंसा, झूठ, चोरी आदि भयंकर पाप पौद्‌गलिक वस्तुओं के मोह से ही पैदा होते हैं ।

आत्म-कल्याण की अभिलाषा ही मानव को सच्चा मानव बनाती है, महात्मा बनाती है और अंत में परमात्मा बनाती है । जबकि पौद्‌गलिक वस्तुओं का मोह इंसान को इंसान रहने नहीं देता है तो फिर महात्मा व परमात्मा बनने की तो बात ही कहां रही ?

आत्म-कल्याण का इच्छुक अहिंसक बनता जाता है और दुन्यवी समृद्धि का इच्छुक हिंसक बनता जाता है ।

दुन्यवी पदार्थ के मोह तथा इसमें से उत्पन्न स्वार्थवृत्तिने मानव को पागल बना दिया है ।

स्वार्थ-वृत्ति में डूबा मनुष्य यह भी भूल जाता है कि अन्य प्राणियों को भी मेरी तरह सुख-दुःख की अनुभूति होती है । कोई अपने ऊपर प्रहार करे या अपने लिए कोई गलत बात कहे तो हमें बहुत बुरा लगता है, बस, इसी प्रकार जब हम किसी के ऊपर प्रहार करते हैं या किसी के लिए गलत बात कहते हैं, तब उसे भी अवश्य दुःख होता है ।

अपने को कोई दुःख देता है तो उसका बदला उसे अवश्य मिलेगा, ऐसा हम मानते हैं तो फिर आप किसी को दुःख दोगे तो उसका बदला आपको मिलेगा, यह बात आप क्यों भूल जाते हो ? दुन्यवी स्वार्थ में लीन बननेवाले की विवेकबुद्धि नष्ट हो जाती है, इस कारण उसे यह सामान्य बात भी समझ में नहीं आती है ।

अपनी आत्मा को पाप से बचाना हो तो दूसरे के हित का विचार करना सीखो । दूसरों के हित का नाश करनेवाले अपना हित साध नहीं सकते हैं । अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के नुकसान का विचार भी नहीं करना क्या मानवता है ?

आप लोग सोचते नहीं है, इसलिए समझ में नहीं आता है । जरा सोचने लगो तो पुण्य क्या ? पाप क्या ? धर्म क्या ? यह समझ में आए बिना नहीं रहेगा ।

प्रतिदिन अपने दिन की कार्य-शैली का विचार करो । आज मैंने कितने पाप किए ? कितना धर्म किया ? इसका रोज विचार किया जाय तो आपका जीवन बदल जायेगा ।

प्रातःकाल उठकर विचार करें – आत्मा के कल्याण के लिए मुझे क्या करना चाहिये ? तथा कैसा आचरण करना चाहिये ? और रात को सोते समय दिन भर के कार्यों को याद करो – करने जैसा कौनसा काम नहीं किया ? और नहीं करने जैसा कौनसा काम किया ?

आत्म-कल्याण की भूख नहीं है इसलिए उसका विशेष विचार नहीं आता है । आत्मा, धर्म, पुण्य-पाप आदि बोलते हो परंतु आत्मा क्या ? आत्मा का धर्म क्या ? पुण्य और पाप का बंध कैसे होता है ? आत्मा की मुक्ति कैसे होती है ? ये विचार किसको आते हैं ?

वीतराग की प्रतिमा : एक दर्पण :–

आत्मा का विचार हो तो वीतराग की प्रतिमा के दर्शन से अनुपम बोध मिल सकता है । **स्नान के बाद दर्पण में अपना मुँह देखते हैं । उसी प्रकार वीतराग की प्रतिमा भी एक दर्पण है । उसमें अपनी आत्मा को देखना है ।**

दुनिया का दर्पण मुँह पर रहे दाग बतलाता है, जबकि वीतराग-प्रतिमा रूपी दर्पण अपने भीतर रहे दाग बतलाता है !

श्री वीतराग और अपनी आत्मा के बीच रहे भेद का विचार करना चाहिये । श्री वीतराग के स्वरूप का विचार करने के साथ अपने वर्तमान स्वरूप का ख्याल कर दोनों के बीच रहे अंतर को जानना चाहिये । अंतर को जानने के बाद संकल्प करें कि मैं उस अंतर को दूर करने का अवश्य प्रयत्न करूंगा ।

वीतराग प्रतिमा के दर्पण में अपने पापों को देखना सीखो और वीतराग की आज्ञानुसार आचरण करने के लिए उद्यमशील बनकर अपने पाप मल को धोते जाओ । इस प्रकार करने से दिन-प्रतिदिन आत्मा शुद्ध बनती जाएगी और फिर कुछ भी करने का बाकी नहीं रहेगा ।

''मैं प्रतिदिन कितनी हिंसा करता हूँ । कितना असत्य बोलता हूँ, दूसरों का हड़पने के लिए कितने प्रपंच करता हूँ, कितना असंयमी बनता हूँ, लोभ और ममता मुझे कितने सता रहे हैं !'' इसका प्रतिदिन विचार करें । इससे आप अपने आपको पहिचान सकोगे ।

आप अपने आपको नहीं पहिचानो, यह कितनी बड़ी अज्ञानता है ? दुनिया आपको उदार कहे और आप मान लेते हो कि मैं उदार हूँ । परंतु आप उदार हो या नहीं ? क्या इसका आपको पता नहीं लगता है ?

पाप का भार बढ़ रहा है तो मेरा क्या होगा ? यह विचार आप नहीं करोगे तो फिर कौन करेगा ? स्वार्थ और स्वाद में भान भूले हुए स्वार्थ व स्वाद के लिए हिंसा आदि करते हैं, परंतु उसके परिणाम का विचार नहीं करते हैं ।

उपकारी फरमाते हैं– **'परिणाम का विचार करना सीखो, जिसका**

परिणाम अच्छा हो, वैसी ही प्रवृत्ति करने में अप्रमादी बनो और जिसका परिणाम बुरा हो वैसी एक भी प्रवृत्ति न करो ।'

तत्त्वज्ञानी महापुरुषों ने संसार के सभी पदार्थों का विचार कर आत्मा के स्वभाव को प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील बनने का उपदेश दिया है, क्योंकि आत्मा के शुद्ध स्वरूप के प्रकटीकरण के बाद शाश्वतकाल वह शुद्ध ही रहता है, उसमें परिवर्तन नहीं आता है ।

दुन्यवी पदार्थ नाशवंत हैं, कितनी ही मेहनत व कितने ही पाप करके दुन्यवी पदार्थ प्राप्त किए हो, फिर भी ये पदार्थ टिकनेवाले नहीं हैं । कई लोग तो उसे प्राप्त करने के बाद इस जीवन में ही खो देते हैं । किसी का अंत तक रहता है परंतु मरने के बाद वह साथ में नहीं चलता है ।

प्राप्त सुख चला जाय, यह किसी को पसंद नहीं है, फिर भी पदार्थों का वियोग निश्चित है तो फिर उन पदार्थों के संयोग का सुख पाने के लिए प्रयत्न करना कौनसी बुद्धिमत्ता है ?

प्राप्त सुख का साधन स्थायी हो तो प्राप्त सुख स्थायी रह सकता है । वह सुख आत्मा सिवाय किसी में नहीं है **'अतः अपनी आत्मा को ऐसी शुद्ध बना दे कि अनंतकाल के बाद भी शुद्ध स्वरूप में परिवर्तन होने न पाए ।'**

रत्नत्रयी की आराधना आवश्यक :–

जब तक आत्मा पुण्य-पाप से लिप्त है तब तक आत्मा शाश्वतकाल तक रह नहीं सकती है । पुण्य-पाप से रहित बनने पर ही आत्मा शाश्वतकाल तक एक समान स्थिति में रह सकती है । उस स्थिति को पाने का वास्तविक उपाय ही जैन धर्म है । **आत्मा को पाप व पुण्य से रहित बनाने के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की आराधना बताई है ।** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रयी ही मोक्ष मार्ग है । इस रत्नत्रयी की आराधना करने से आत्मा का रत्नत्रयीमय स्वरूप प्रकट होता है । आत्मा पुण्य-पाप से सर्वथा रहित बनती है ।

साधु जीवन ही श्रेष्ठ जीवन :–

रत्नत्रयी की सर्वश्रेष्ठ आराधना करने के लिए अन्य सभी साधनाओं

से मुक्त हो जाना चाहिये । उसके लिए ज्ञानियों ने संसार-त्यागपूर्वक संयम पालन का उपदेश दिया है ।

संसार में रहकर आत्मा रत्नत्रयी की आराधना नहीं कर सकती है । संसारी लोगों का जीवन पाप से सर्वथा मुक्त व सिर्फ रत्नत्रयी की आराधनामय संभव नहीं है ।

इस जगत् में कल्याण का एक मात्र मार्ग रत्नत्रयी की आराधना है । अतः साधु जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है । इसमें शंका को कोई स्थान नहीं है ।

आत्म-कल्याण के लिए इच्छुक विवेकी-आत्मा साधु जीवन को न चाहे या अनुमोदन न करे, यह संभव नहीं है, क्योंकि आत्मा के स्वभाव को प्रकट करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय साधु जीवन ही है ।

शक्य हो तो साधु जीवन ही स्वीकार करना चाहिये परंतु इतनी उच्च भूमिका तक पहुँचना जिसके लिए अभी संभव न हो उसे संसार में रहते हुए भी रत्नत्रयी की शक्य आराधना करनी चाहिये ।

साधु के लिए हिंसा-विरमण आदि महाव्रत है तो गृहस्थों के लिए स्थूल प्राणातिपात विरमण आदि अणुव्रत है । महाव्रतों के लिए जो असमर्थ हो, वे अणुव्रतधारी बनें । अणुव्रतों के पालन में वह इस प्रकार प्रयत्नशील बने कि जिसके प्रभाव से निकट भविष्य में महाव्रतों की प्राप्ति सुगम हो जाय ।

संयम की सच्ची अभिलाषा हो तो गृहस्थपने को भी उच्च कोटि का बना सकते हैं । आज कइयों को संयम की बातें पसंद नहीं हैं और साधु सिर्फ संयम का ही उपदेश दे, यह बात अनंतज्ञानी जिनेश्वर देव फरमाते हैं ।

सच्चे साधु एक मात्र संयम के ही उपासक और एक मात्र संयम के ही उपदेशक होने चाहिये । साधु आत्म-कल्याण की प्रवृत्ति करनेवाले होते हैं, किसी प्रकार अन्य किसी के अकल्याण की प्रवृत्ति करनेवाले नहीं होते हैं ।

सच्चे साधु प्राणी मात्र का कल्याण चाहते हैं । इसी कारण वे जिनेश्वर निर्दिष्ट संयम का ही उपदेश देते हैं । गृहस्थधर्म-श्रावक धर्म का उपदेश भी वस्तुतः संयम का ही उपदेश है ।

निर्जरा धर्म और पुण्य धर्म :–

पाप व पुण्य दोनों से मुक्त बनने के लिए रत्नत्रयी की आराधना है, परंतु एक पुण्य ऐसा भी है जो रत्नत्रयी की आराधना में सहायक बनता है ।

मोक्ष के ध्येय से मोक्ष मार्ग का आचरण करते समय उच्च कोटि के पुण्य का बंध होता है, परंतु उससे घबराने जैसा नहीं है । मोक्ष के ध्येय से मोक्ष साधक धर्म का सेवन करनेवाले को पुण्य-बंध होता है । ऐसे पुण्य के योग से उत्तम सामग्री प्राप्त होती है, परंतु उस सामग्री में मोहित बनने के बजाय वे उसका सदुपयोग करते हैं ।

पुण्यानुबंधी पुण्य के उदय से प्राप्त सामग्री आत्मा को मोहाधीन नहीं बनाती है, बल्कि आत्मा की विरक्ति को बढ़ाती है । जैन शासन में निर्जरा धर्म व पुण्य धर्म दोनों बतलाए हैं, परंतु पुण्य-धर्म का आचरण भी मोक्ष के ध्येय से करना चाहिये ।

इन सब बातों का आचरण करने में आप लोग प्रयत्नशील बनो, इसी ध्येय से यह सब बातें आपको सुनाता हूँ । इन बातों के आचरण के लिए सर्वप्रथम आत्मार्थी बनना जरूरी है । **आत्मार्थी बनने के बाद पाप त्याग व धर्म सेवन से जो फल मिलता है, वह अन्य ध्येय से करने पर नहीं मिलता है ।**

आप लोग पौद्‌गलिक पदार्थों के योग में सुख मानते हो, जबकि ज्ञानी भगवंत पौद्‌गलिक योग के नाश में सुख की बात करते हैं । आपकी और ज्ञानियों की मान्यता में यह बहुत बड़ा अंतर है । वह दूर हो तो आत्मार्थी बनकर आत्म-स्वभाव को प्रकट कर सकते हैं । **इस मान्यता भेद को दूर करने के बाद कदाचित् आप संसार का त्याग न कर सको तो भी दुर्गति से बच सकोगे, क्योंकि यह संसार आपको अखरेगा । संसार से मुक्त बनने की इच्छा होती रहेगी । इस कारण थोड़ा पाप करते हुए भी आपको कंपन होगा ।**

ज्ञानियों द्वारा निर्दिष्ट विधि के अनुसार वीतराग परमात्मा की प्रतिमा के दर्शन व पूजन करोगे तो जीवन में परिवर्तन आए बिना नहीं रहेगा । जिनेश्वर देव की पूजा करने वाले का संसार रस घटना ही चाहिये ।

जिनेश्वर देव की पूजा के बाद भी जिसका संसार रस बढ़ता हो, वास्तव में उस आत्मा ने जिनपूजा के रहस्य को समझा ही नहीं है ।

श्री जिनेश्वर देव का दर्शन व पूजन, सुगुरू की सेवा तथा धर्मानुष्ठानों का आचरण आत्मा के स्वभाव को प्रकट करने के ध्येय से करो । आत्म-स्वभाव को प्रकट करने के ध्येय से विधि बहुमानपूर्वक जो आत्मा देव पूजा आदि करती है, उसका आत्म-स्वभाव अल्पकाल में प्रकट हुए बिना रहता नहीं है ।

परमात्मा की आज्ञा :–

यहाँ कई लोग ऐसे भी हैं जो **'परमात्मा सर्वत्र है'** ऐसा मानते हैं । **'परमात्मा सब देखते है'** ऐसा मानने पर भी पाप का आचरण करते है, यह कितनी अधिक धृष्टता है ?

परमात्मा राग-द्वेष से रहित हैं, और मोक्ष में विराजमान हैं । परंतु उन तारकों का उपदेश अपने पास है । उन तारकों के उपदेश को आचरण में लाना चाहिये, क्योंकि उसके बिना अपना कल्याण नहीं हैं । उन तारकों के उपदेश का पालन कर अनंत आत्माओं ने अपना कल्याण किया है । **वर्तमान काल में भी अनेक आत्माएँ अपना कल्याण कर रही हैं और भविष्य में अनंत आत्माएँ अपना कल्याण करेगी । ऐसी उत्तम सामग्री को प्राप्त कर हम भी अपना कल्याण कर सके, इस के लिए हमें सावधानी रखनी चाहिये और प्रभु आज्ञा के पालन के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिये । सभी प्रभु आज्ञा के पालक बनकर अपना कल्याण करें, यही एक शुभ-अभिलाषा ।**

20
सच्चा-धर्म

कराड **माघ शुक्ला 13, वि.सं. 1994,**
दि. 12-02-1938, शनिवार

अनंत उपकारी श्री जिनेश्वर परमात्मा के शासन को प्राप्त कर अनेक महापुरुषों ने वीतराग परमात्मा के शासन को अपने जीवन में आत्मसात् किया और अनंत ज्ञानियों द्वारा निर्दिष्ट जिन-जिन वस्तुओं की स्वयं को वास्तविक अनुभूति हुई, उन सब का निरूपण उन महापुरुषों ने जगत् के भव्य जीवों के कल्याण के लिए किया है ।

उन महापुरुषों ने अनुभव किया कि अनंतज्ञानी द्वारा निर्दिष्ट एक भी बात ऐसी नहीं है, जिसकी प्रतीति न हो अर्थात् अनंतज्ञानी परमात्मा ने जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल सत्य है । उन महापुरुषों के दिल में अनंत ज्ञानियों के प्रति सच्ची श्रद्धा थी । इसी कारण उन्होंने उन वस्तुओं का निरूपण किया है ।

महापुरुषों ने जिन वस्तुओं का निरूपण किया है, उसे अच्छी तरह से समझने का प्रयत्न किया जाय तो बुद्धिशाली आत्मा को उन महापुरुषों के कथन में कहीं भी अविश्वास नहीं होगा । इतना होने पर भी विवेकपूर्वक विचार नहीं करने के कारण सत्य वस्तु में भी अश्रद्धा पैदा हो तो उसका कोई उपाय नहीं है ।

देवता भी झुकते हैं :–

जिनेश्वर परमात्मा के शासन को समर्पित महापुरुषों को इस बात की प्रतीति हो गई थी कि– **जिनेश्वर परमात्मा की आज्ञा की उत्कृष्ट आराधना करनेवाली आत्मा को देवता भी नमस्कार करते हैं ।** जिन देवताओं को धर्म-महिमा हृदयगत हुई है, ऐसे देवता आराधक आत्मा को नमस्कार करें,

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । धर्मवृत्तिवाली आत्माएँ उत्तम कोटि के धर्मसेवकों को नमस्कार किए बिना नहीं रह सकती हैं । इसी कारण परम उपकारी श्री शय्यंभवसूरिजी म. फरमाते हैं कि जिसका मन धर्म में सदा लीन होता है, उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं ।

'देवता झुकते हैं'– इस बात को याद कर सिर्फ देखते ही रहें कि **'देवता कहाँ हैं ? हो तो भी धर्म करनेवाले को झुकते हुए कहां दिखाई देते हैं ?'** इसका क्या परिणाम होगा ? सिर्फ ज्ञानियों के अनुभव सिद्ध वचन पर अश्रद्धा ही होगी न ! देवता उसी को झुकते हैं जिसका मन सदा धर्म में जुडा होता है ।

दुनिया में कहावत है, **'लक्ष्मी व्यापार के अधीन है ।'** तो व्यवहार में इसका क्या अर्थ करते हो ?

वहां जैसा विवेक रखते हो, वैसा विवेक यहाँ भी रखो तो वस्तु का ख्याल आए और श्रद्धा मजबूत बने ।

ज्ञानियों द्वारा निर्दिष्ट अहिंसा, संयम और तप धर्म में जिसका चित्त लीन है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं, क्योंकि देवता अहिंसा, संयम और तप धर्म का पालन करने में असमर्थ हैं, परंतु अहिंसा, संयम और तप धर्म में रुचिवाले हैं । धर्म का प्रभाव ही ऐसा है कि अवसर आने पर धर्म की रुचि देवता को भी धर्मी मनुष्य को झुकना पड़ता है ।

अहिंसा-संयम व तप की कीमत :–

मनुष्य भव की महिमा का हेतु इससे स्पष्ट हो जाता है । **'देवता भी धर्मी को नमस्कार करते हैं'** यह बताकर ज्ञानी यही फरमाते हैं कि धर्म का प्रभाव अनुपम है । धर्म के प्रभाव को जो अनुभव मनुष्य कर सकता है, वह देवता भी नहीं कर सकते हैं । इसी कारण तत्त्वज्ञानियों ने देवगति को दुर्लभ नहीं बल्कि मनुष्यगति को दुर्लभ कहा है ।

तत्त्वज्ञानियों की दृष्टि से उसी गति की कीमत है, जहां अहिंसा, संयम और तप धर्म की आराधना हो सकती है । इससे यह सिद्ध होता है कि जो वस्तु देवों को भी दुर्लभ है, वह मनुष्य को दुर्लभ नहीं है, इस कारण मनुष्य जीवन की महत्ता सर्वाधिक है ।

आराधक आत्मा के आगे देवलोक की दिव्य संपत्ति रखी जाय और उसके बदले में उसे अहिंसा, संयम व तप की आराधना छोड़ने को कहा जाय तो वह सच्चा आराधक देवलोक की संपत्ति की ओर नजर भी नहीं करेगा । सच्चे आराधक को वह संपत्ति देखने की भी फुर्सत न हो तो उसे भोगने की तो बात ही कहाँ ? परंतु यह तभी बन सकता है– **'जब ज्ञानियों ने मनुष्य भव को जिस ध्येय से दुर्लभ कहा है, वह बात हृदय में जंची हो और उस बात को सिद्ध करने के लिए कुछ भी भोग देने के लिए मन तैयार हो ।'**

ज्ञानियों द्वारा निर्दिष्ट मनुष्य-जीवन की महत्ता का जिसे ख्याल नहीं है और धर्म आराधना की जिसके मन कीमत नहीं है, ऐसा व्यक्ति दैवी संपत्ति तो दूर रहे, इस लोक की तुच्छ संपत्ति के लोभ में फंसकर अपने धर्म को भी बेचाने के लिए तैयार हो जाता है ।

धर्मपालन की दृष्टि से प्रधानता :–

मनुष्य जीवन किस कारण दुर्लभ है, उसका सही जवाब देनेवाले बहुत कम मिलेंगे । जो ऋद्धि व संपत्ति देवलोक में हैं, उसका एक अंश भी मनुष्य भव में नहीं है, फिर भी ज्ञानियों ने मनुष्य भव को क्यों दुर्लभ कहा हैं ? यह बात सोचकर उसका निश्चय कर लेना चाहिये ।

जो काम देवता नहीं कर सकते, वह मनुष्य कर सकते हैं । इसी कारण मनुष्य भव को दुर्लभ कहा है । देवताओं के पास सिर्फ ऋद्धि है, परंतु ज्ञान नहीं है, ऐसा भी नहीं है । देवता तीन ज्ञान के स्वामी होते हैं । इस दृष्टि से देवता को मनुष्य से ऊंचा मान सकते हैं, परंतु ज्ञानियों ने इस दृष्टि को प्रधानता नहीं दी है । ज्ञानियों ने धर्मपालन की दृष्टि को प्रधानता दी है ।

देवताओं के पास ऋद्धि-सिद्धि है । वे तीन ज्ञान के स्वामी हैं, परंतु देव, देवेन्द्र और यावत् सर्वार्थ सिद्ध विमानवासी देव में भी धर्म पालन की जो शक्ति नहीं है, वह शक्ति मनुष्य के पास है ।

मनुष्य गति की महत्ता जिस कारण है, उसका आज कौन विचार करता है ? मनुष्य जीवन की महत्ता जिस हेतु से है, आज तो शिक्षण से वह हेतु नष्ट हो रहा है । ज्ञानी महापुरुषों की बात ही सुसाधु करते हैं, परंतु अनेकों को उसकी कीमत नहीं है क्योंकि उन्हें दुन्यवी स्वार्थ सिवाय अन्य

कोई विचार कीमती नहीं लगता है । संसार अनादि अनंत है, उसका कोई अंत ला नहीं सकता है । उसे कहीं से भी देखो, वह दुःख रहित नहीं होगा । **नीम को कहीं से भी चखोगे, वह मीठा नहीं होता । उसी प्रकार यह संसार कहीं भी दुःख रहित नहीं हो सकता है ।** ऐसे संसार से मुक्त बनने की इच्छा पैदा हो तो ज्ञानी के कथन की कीमत का ख्याल आ सकता है ।

दुन्यवी वस्तुओं की प्राप्ति में ही जो सुख मानता हो, उसे मनुष्य भव की महत्ता का हेतु ख्याल में आया ही नहीं है । संसार से मुक्त बनने की ही अभिलाषी बने हैं, वे ही मनुष्य भव की महत्ता समझ पाए हैं ।

आप लोगों के लिए जैन साधु लगभग अपरिचित जैसे हो गए हैं । जैन साधु का आचरण कैसा होता है और वे किसका उपदेश देते हैं ? इस बात का अनेक को पता नहीं है । इस कारण शायद कुछ बातें नवीन लग सकती हैं । बातें नई लगे इतने मात्र से घबराने की आवश्यकता नहीं है । जो कहा जाता है, उसे ध्यानपूर्वक सुनो और विवेकपूर्वक उस पर विचार करो । पसंद पडे या न पडे, फिर भी सुनने व सोचने का न छोड़े । जहां शंका पड़े वहां अवश्य पूछे । इस प्रकार करोगे तो अनंतज्ञानी की बातों में अवश्य रूचि पैदा होगी ।

आप सुनो, विचार करो और जहाँ शंका पड़े वहाँ जिज्ञासा रखकर अवश्य पूछो । इतने वर्षों तक दूसरा शिक्षण बहुत प्राप्त किया हैं । परंतु वह शिक्षण, इस शिक्षण के बिना फलदायी नहीं बनेगा । यह शिक्षण ही ऐसा है जो सभी सामग्री का सदुपयोग कराएगा । परंतु दुन्यवी शिक्षण ऐसी कोई गारंटी नहीं दे सकता है । वह तो शक्तिओं का दुरुपयोग न कराए तो भी बहुत है । आज के अनुभवी को भी यह कहना पडता है ।

धर्म-तीर्थ स्थापना का हेतु :–

श्री तीर्थंकर परमात्मा ने धर्म तीर्थ की स्थापना की है, वह दुनिया में अपनी प्रसिद्धि बढ़ाने के लिए या भक्त मंडल बढ़ाने के लिए नहीं की है । **पूर्व के तीसरे भव में उन तारकों ने परोपकार की तीव्र भावना द्वारा सर्वोत्कृष्ट पुण्य उपार्जित किया था । उस पुण्य के कारण ही वे तारक परमात्मा धर्म-तीर्थ की स्थापना करते है ।**

उन्हें सुख के अर्थी व दुःख से संत्रस्त बने प्राणियों को दुःख से

मुक्त कराने तथा अनंत सुख प्रदान करने की भावना होती है । उस भावना के फल स्वरूप धर्म-तीर्थ की स्थापना होती है, क्योंकि जो भी प्राणी उस धर्म-तीर्थ की शरण में आता है, अपना दुःख मूल से जाता है और उसे अनंत सुख की प्राप्ति होती है ।

अनंतज्ञानी परमात्मा ने अपने अनंतज्ञान के बल से प्रत्यक्ष देखा है कि जगत् के जीव इस मार्ग को छोड़ अन्य किसी मार्ग से इच्छित सुख पा नहीं सकते हैं । इसी कारण उन तारकों ने धर्म-तीर्थ की स्थापना की और उस धर्म-तीर्थ की शरण में आने का उपदेश दिया ।

'इस धर्म तीर्थ की आराधना जिस तरह मनुष्य कर सकते हैं, उस तरह उच्च कोटि के देवता या इन्द्र भी नहीं कर सकते हैं ।' यह बात उन तारक परमात्मा ने कही है । इस धर्म-तीर्थ की महिमा समझने के बाद देव भी अपने भोगों को भयंकर मानते हैं ।

ज्ञानी महापुरुषों ने चक्रवर्ती व इन्द्र के आगे भी इस संसार को असार व दुःखमय कहा है । इस संसार से छूटने के लिए दुन्यवी भोगों का त्याग कर अहिंसा, संयम और तप धर्म की आराधना करने का ही उपदेश दिया है । यह बात समझ में आने के बाद इन्द्रों को भी अपना आयुष्य पूरा करना मुश्किल हो जाता है क्योंकि वहां भोग भयंकर लगने पर भी उनका त्याग संभव नहीं है । अहिंसा, संयम व तप रूप धर्म का सेवन अच्छा लगता है, परंतु उस धर्म का पालन शक्य नहीं है । इस कारण कब आयुष्य पूरा हो ? कब मनुष्य भव की प्राप्ति हो ? और कब संसार से मुक्त बनानेवाले धर्म-तीर्थ की सेवा करे ? यही भावना इन्द्रों की होती है ।

ऐसे उत्तम मनुष्य-भव को आप किसमें गँवा रहे हो ? यह सोचने की बात है । धर्म-तीर्थ के स्वरूप को समझे हुए इन्द्र जिस भव को सतत चाहते हैं, वह मनुष्य भव आपको मिल गया है । फिर भी आप उसे व्यर्थ गँवा दो तो यह आपके लिए कम शोचनीय नहीं होगा ।'

तीर्थंकर परमात्मा के शासन की उत्कृष्ट आराधना के संदर्भ में देवता हम से दुर्बल हैं, बाकी उनका आरोग्य हमसे बहुत अच्छा होता है । आरोग्य, भोग-सामग्री व अन्य शक्तियों का विचार किया जाय तो देवों को सबल व भायशाली मान सकते हैं ।

मनुष्य के शरीर की तरह देवता के शरीर में किसी प्रकार का विकार पैदा नहीं होता है । मनुष्य को भूख लगने पर खाने की चिंता व खाने के बाद पचाने की चिंता होती हैं, परंतु देवों को यह चिंता नहीं होती है । **इतना होने पर भी देव-गति की अपेक्षा मनुष्य गति को उच्च माना गया हैं क्योंकि अनंतज्ञानियों ने रत्नत्रयी की जो आराधना बताई है, उसका संपूर्ण पालन मनुष्य ही कर सकता है किंतु देव नहीं ।**

हम मनुष्य को देव-पूज्य बनाना चाहते हैं, जबकि आज कई मनुष्यों का जीवन तिर्यंयों से भी ज्यादा खराब है । आज तो माननी की कीमत भटकते कुत्ते जैसी हो गई है । उस स्थिति को दूर कर मनुष्य भव को देव-पूज्य बनाना है, इसके लिए उसे सर्वप्रथम तपस्वी बनना पड़ेगा । फिर संयमी व फिर अहिंसक बनना होगा ।

तपस्वी कौन ? :–

'तपस्वी अर्थात् बेचारा नहीं बल्कि इच्छाओं का निरोध करनेवाला ।'
तपस्वी अर्थात् आधि-व्याधि बढ़ानेवाली इच्छाओं को काबू में रखनेवाला ।

आधि व व्याधि की जनेता उपाधि है । आधि-व्याधि को उत्पन्न करनेवाली उपाधि की इच्छा को रोकना, उसी को हम तप कहते हैं, यह तप जिसमें आता हैं वह सच्चा मानवी बनता है । सच्चा मानवी वही है जो तपस्वी है । अथवा तपस्वी बनने का अर्थी है ।

जो वस्तुएँ इच्छा मात्र से न मिले, इच्छा व मेहनत से भी न मिले, मिलने के बाद भी इच्छानुसार भोग न सके, कदाचित् मिले व भोग भी ले तो भी अंत समय में तो सब छोड़ना ही पड़ता है । वे सब वस्तुएँ उपाधि कहलाती हैं ।

भाग्य योग से ये वस्तुएँ मिल जाय यह अलग बात है, परंतु दुन्यवी सुख का तथा उस सुख के साधनभूत पदार्थों को पाने की, उनके रक्षण की तथा भोगने की इच्छा को रोकना उसी का नाम तप है ।

दुःख के समय दूसरों का ही दोष देखने वाला जिंदगी में कभी सुखी नहीं होता है । दुःख आने पर **'यह दुःख मेरे ही कर्म का फल है'** ऐसा जो मानता हैं, वही आत्मा सुखी होती है । दुःख और सुख अपने ही कर्म का

फल न होता तो लुटेरे किसी को सुखपूर्वक जीने नहीं देते । आज कई बुद्धिशाली, बुद्धिहीन सेठ के वहां नौकरी करते हैं इसका क्या कारण है ? दुर्बल व्यक्ति के पास भी अपार समृद्धि है, यह किसके बल पर ? नादान लोग उन्हें देखकर जलते हैं, परंतु उनका कुछ नहीं चलता है, क्योंकि वे शरीर से कमजोर हैं, पर पुण्य से बलवान हैं ।

अनुभवी तत्वज्ञानियों का कथन है कि लक्ष्मी खराब है और दान अच्छा हैं । धनवान् लोग लक्ष्मी को तिजोरी में बंद रखे इसके बजाय उसका सदुपयोग करें, इसी में उनकी बुद्धिमत्ता है ।

परमात्मा के शासन में लक्ष्मी को अच्छी नहीं माना है, बल्कि दान को अच्छा माना है ।

लक्ष्मी व लक्ष्मीवान की ज्ञानियों के मन कोई कीमत नहीं है । हाँ, उस वस्तु का सदुपयोग कीमती है । लक्ष्मी तो दुर्गति में ले जानेवाली है । दान सद्गति में ले जानेवाला है । लक्ष्मी की मूर्च्छा उतारने के लिए दान होना चाहिए । असार वस्तु में से सार रूप वस्तुओं का इस प्रकार सदुपयोग हो सकता है । परंतु पहले ये वस्तुएँ उपाधि रूप लगनी चाहिए ।

दान का सही ध्येय ख्याल में न हो तो दान भी उपाधि को बढ़ानेवाला हो जाता है । उपाधि मात्र से मुक्त होने की भावना से लक्ष्मीवान व्यक्ति दान की प्रवृत्ति करे तो अनेक आत्माओं को धर्म में जोड़ सकते हैं और धर्मशासन की प्रभावना कर सकते हैं । लक्ष्मीवान शासन-प्रभावना और धर्मशासन की प्रभावना कर सकते हैं, यह प्रभाव लक्ष्मी का नहीं किंतु उसका सदुपयोग करने की वृत्ति का है ।

संसार विषमता का संग्रहस्थान :–

दुन्यवी किसी भी पदार्थ की इच्छा पाप है । उस इच्छा का निरोध करने की इच्छा जिसमें हो वो ही सच्चा मानवी है । ऐसा व्यक्ति कभी भी रसपूर्वक अनीति नहीं करेगा । **दुन्यवी पदार्थ की इच्छा पर जिसका नियंत्रण नहीं हैं ऐसा ही व्यक्ति अनीति बढाएगा ।**

दुन्यवी पदार्थ अपनी इच्छानुसार टिकते नहीं हैं । मेहनत करने पर भी पुण्य न हो तो मिलते नहीं हैं, भाग्य योग से मिल जाय तो भी पुण्य बिना

उनका भोग संभव नहीं है । इस वस्तु को नहीं समझाने वाले समानवाद (साम्यवाद) की बात करते हैं और संसार से विषमता मिटाने का लक्ष्य रखते है । परतु ज्ञानी फरमाते हैं कि यह संसार ही विषमतामय है ।

सभी विषमताओं का संग्रहस्थान उसी का नाम संसार है । संसार में अनादिकाल से विषमता है और अनंतकाल तक स्वयं रहेगी ।

उस विषमता को दूर करने की बातें करने वाले और उनके लिए योजनाएँ घडकर प्रयत्न करने वाले स्वयं दूर हो जाएंगे, परंतु संसार की विषमता दूर होने वाली नहीं है ।

अतः विषमता ऊपर गुस्सा न करो, बल्कि उससे बचने का प्रयत्न करे ।

मनुष्य संकल्प करे तो विषमता रहित स्थान में जा सकता है ।

संसार की विषमता को दूर करने के बजाय ज्ञानियों ने अपने आपको ही विषमता के स्थान को छोड़ने के लिए प्रयत्न करने की सलाह दी है ।

संसार में विषमता थी, है और रहेगी । जिसे विषमता नहीं चाहिये, उसे संसार से मुक्त बनने के लिए प्रयत्न करना चाहिये । उसके पहले कदम के रूप में दुन्यवी पदार्थों की इच्छाओं पर नियंत्रण पाना चाहिये ।

इच्छा मात्र से या प्रयत्न मात्र से भी जो वस्तु मिलती नहीं है । भाग्य हो तो ही मिलती हैं, और टिकती हैं । भाग्य होने पर ही उसे भोग सकते हैं और अंत में उसे छोड कर ही जाना पडता है । दुन्यवी सुख के ध्येय से उन वस्तुओं को पाने की इच्छा करना ही पाप है, ऐसी जिसकी मान्यता होती है, वे ही सच्चे मानव हैं ।

दुन्यवी सुख के लिए दुन्यवी पदार्थों की इच्छा करना भी पाप है । इस मान्यता का जगत् में प्रसार हो तो अनीति मात्र से बच सकते हैं । दुनिया में अनीति न रहे, फिर पुलिस कोर्टों की भी जरूरत नहीं रहेगी । यद्यपि सारी दुनिया इस मान्यता का स्वीकार करनेवाली नहीं हैं । **इतना ही नहीं, इस मान्यता को स्वीकार करनेवालों को बेवकूफ माननेवाले भी लोग इस दुनिया में हैं ।** फिर भी इस गुण को पाए बिना किसी का उद्धार होनेवाला नहीं है । उपाधि मात्र को भगाने का गुण, इस एक गुण में रहा हुआ है ।

'पौद्‌गलिक इच्छा पाप है' यह एक ही गुण आ जाय तो फिर बाकी क्या रहता है ? तप को बेचनेवाले और संयम की होली करनेवाले अहिंसक नहीं बन सकते हैं ।

उपवास आदि बाह्य तप है इच्छा निरोधमय तप का एक अभ्यास है । वास्तविक तप मात्र खाने की ही नहीं, बल्कि सभी इच्छाओं को रोकना है ।

मोह राजा ने घर घर में इच्छा रूपी नटी छोड़ रखी है । उसके अधीन रहनेवाला अपने आपको स्वतंत्र मानता है तो वह उसकी मूर्खता ही है । सच्चा मानवी तो दुन्यवी पदार्थों की इच्छाओं का मित्र नहीं, लेकिन दुश्मन होता है ।

सदाचार का त्याग :–

नाशवंत पदार्थों की इच्छा करना पाप है । उन इच्छाओं का मित्र सच्चा मानव नहीं कहला सकता है । सच्चा मानव तो उन पाप रूप इच्छाओं का दुश्मन होता है । यह भावना जिस घर में होती है, उस घर में त्याग व वैराग्य तो अलंकार बनते हैं ।

पौद्‌गलिक इच्छाओं का जो दुश्मन होगा, वही व्यक्ति प्राप्त सामग्री में संतोष मान सकता है । उदारता, सदाचार, सहिष्णुता और सद्‌विचार ये सभी गुण उसे प्राप्त होंगे ।

पौद्‌गलिक इच्छाओं का गुलाम सदाचारी कब तक रह सकता हैं ? जब तक सुंदर रूप आदि सामग्री उसके सामने न आए । जब कि जो पौद्‌गलिक इच्छाओं का वैरी होगा वह तो कदाचित इच्छा हो जाएगी तो भी उसे मारने का प्रयत्न करेगा । जो पौद्‌गलिक इच्छाओं का पूजारी होगा, वह तो इच्छा होते ही उसे पूरी करने की कोशिश किए बिना नहीं रहेगा ।

पौद्‌गलिक इच्छा दुश्मन है, भयंकर कोटि का पाप है । उसे न करे और अभ्यास द्वारा उसे वश में रखने का प्रयत्न करो ।

इस मान्यता का संपूर्ण पालन मनुष्य ही कर सकता है । इच्छाओं पर नियंत्रण न आए तब तक सही दिशा में प्रयाण संभव नहीं है ।

पौद्‌गलिक इच्छाओं का जो गुलाम है और उसी को पूरी करने की कोशिश करता है, ऐसा व्यक्ति किसी को सुखी देखेगा तो उसकी आंखों में ईर्ष्या का जहर पैदा हुए बिना नहीं रहेगा ।

इच्छा निरोध ही सच्चा तप है । सच्चे तप से संयम और संयम से अहिंसा आती है ।

जीवन में अहिंसा आएगी तो दूसरे को पीड़ा देना-बंद होगा । परिणाम स्वरूप अपना वास वहाँ होगा, जहाँ पीडा मात्र नहीं हो । जिनेश्वर देव के शासन सिवाय यह मार्ग अन्यत्र कहीं भी नहीं है । अतः एक मात्र वीतराग शासन की आराधना करने के लिए तैयार बनो । इतना न हो सके तो कम से कम इसे पहचाने बिना निंदा तो कभी न करे ।

अनंतकाल से प्राप्त शक्तियों का दुरुपयोग करेंगे तो ये शक्तियाँ पुनः प्राप्त होनेवाली नहीं हैं । सर्व प्रथम सच्चा मानव बनने के लिए इच्छाओं का निरोध करने वाले बनों, फिर जीवन में स्वतः संयम आएगा । संयम आने पर आत्मा अहिंसक बनेगी ।

अहिंसा, संयम और तप धर्म जिसके जीवन में आएगा, वह देवों को भी पूज्य बनेगा । अहिंसा, संयम व तप धर्म पालन की पूर्ण शक्ति मनुष्य में ही है । इसी कारण देवगति से मनुष्यगति का स्थान ऊंचा है । **इस वस्तु को समझकर अहिंसा, संयम तथा तप धर्म में आदरवाले बनों । इसके लिए पौद्‌गलिक इच्छाओं को पाप रूप मानों । उसमें से संयम पैदा कर अहिंसक बनों । इस प्रकार देव पूज्य बनकर मुक्ति सुख के भोक्ता बनों, यही एक शुभाभिलाषा ।**

21
पाप का मूल

अनंत उपकारी महापुरुष फरमाते हैं कि **'अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है । जिन आत्माओं का अंतःकरण धर्म में सदा लीन रहता है उन आत्माओं को देवता भी पूज्य मानते हैं ।'**

अहिंसा, संयम और तप धर्म की उत्कृष्ट आराधना करने की जो शक्ति मनुष्य में है, वह शक्ति देव भव में भी नहीं हैं । इसी कारण देव भव से मनुष्य भव को ऊंचा माना गया है । यह बात बराबर ख्याल में आ जाय तो अपना अनुचित वर्तन अखरे बिना और जीवन सुधरे बिना नहीं रहेगा ।

ज्ञानियों ने धर्म के तीन भेद अहिंसा, संयम और तप बतलाएँ हैं । उसमें पहली व्याख्या तप की करने की है । तप के साथ संयम आने लगता है और संयम आएगा तो अहिंसा भी अवश्य आएगी । इसलिए कह सकते है कि व्यक्ति जब तक तपस्वी नहीं बनता है अथवा तपस्वी बनने की इच्छा नहीं करता है, तब तक इंसान नहीं बनता है ।

सिर्फ भूखे-प्यासा रहना उसी को तप नहीं कहा जाता है । ज्ञानियों ने इच्छा निरोध को तप कहा है । आज अनेक तपस्वियों को यह बात ख्याल में नहीं है । ज्ञानी निर्दिष्ट तप करने का प्रयत्न किया जाय तो व्यक्ति संयमी व सच्चा अहिंसक बने बिना नहीं रहेगा ।

सदाचार की नींव इच्छा निरोध है । सदाचारी बनने के लिए इच्छाओं का निरोध किए बिना नहीं चलेगा । इच्छा निरोध का अभाव, आदमी को शैतान बना दे तो भी आश्चर्य जैसी बात नहीं है ।

आज मानवी का व्यवहार-वर्तन कैसा है ? **'हम सच्चे मनुष्य हैं या नहीं ?'** इसका विवेकपूर्वक प्रतिदिन थोड़ा विचार किया जाय तो स्वयं को

ख्याल आ सकता है । **मानवी को स्वयं अपना परीक्षक बनना चाहिए । इसके लिए अनंतज्ञानियों की दृष्टि का उपयोग करना चाहिए ।** जैन शासन ने जो दृष्टि बताई है, उस दृष्टि से हम अपने जीवन के परीक्षक बनेंगे तो अनंतज्ञानियों ने मनुष्य जीवन की महत्ता का जो हेतु बताया है, उसे सिद्ध करने के लिए हम प्रयत्न कर सकेंगे ।

मनुष्य जीवन की महत्ता का ख्याल आए तो ही मनुष्य का जीवन सुधर सकता हैं । **मनुष्य जीवन को सुधारने वाली चीज अहिंसा, संयम और तप हैं ।** अहिंसा, संयम और तप का जितना अधिक पालन होगा, उतना ही यह जीवन सार्थक होगा, यह बात हृदय में बैठ जानी चाहिए । इस दृष्टि से अपने जीवन का विचार करे क्योंकि अहिंसा संयम और तप की उपेक्षा सच्चे कल्याण की उपेक्षा है ।

इच्छा-निरोध :–

जो पदार्थ आत्मा के नहीं हैं, आत्म-स्वरूप में जिनका स्थान नहीं हैं, जो आत्म-स्वरूप या आत्म-गुणों को विकसित करने में मददरूप नहीं हैं, ऐसे पदार्थों की इच्छा का निरोध करना उसी को ज्ञानियों ने सच्चे अर्थ में तप कहा है ।

जब तक आत्मा संसार के बंधन में है । शरीर मन के बंधन में हैं, तब तक इच्छा हुए बिना नहीं रहेगी ।'

आत्मश्रेय के लिए आत्म-गुण व आत्मशक्ति को विकसित करने के लिए जो इच्छा जरूरी है, उसे रोकना तप नहीं है बल्कि जो आत्म-कल्याण में अनावश्यक है, आत्म-हित को हानि करने वाली हैं, उन्हें रोकना तप है ।

दुन्यवी सुख तथा नाशवंत इच्छाओं का निरोध करना, उसी का नाम तप है । यही उसका तात्पर्यार्थ है ।

यह तप आ जाय तो मानवी, सच्चा मानवी बन जाता है, महात्मा बन जाता है और मानवी होने पर भी देवों का भी पूज्य बन जाता है ।'

इसमें कोई बड़ी बात नहीं है । जीवन में आचरण के रूप में यह तप न आया हो तो भी **'आत्म-कल्याण के लिए यह तप अवश्य करना चाहिए ।'** ऐसी तप की इच्छा जगे तब भी मानवता विकसित होने लगती है । उस इच्छा के योग से मानवी, मानव बनता है । उसके अभाव में मानवी मानव भी

नहीं बन पाता है । अनंतज्ञानियों की दृष्टि में सच्चा मानवी वो ही है जिसमें अहिंसा, संयम व तप धर्म की रुचि है ।

'आत्म-गुणों के विकास में बाधक या अनुपयोगी वस्तुओं की इच्छा करना बड़ा पाप है ।' यह मानकर आत्म-कल्याण के इच्छुक इच्छाओं के वैरी बन जाते हैं । यह वृत्ति आ जाय तो दुनिया में जो भयंकर पाप बढ़े हैं, वे नहीं रहेंगे ।

हिंसा, झूठ, चोरी, विषय संग आदि सभी पापों की जड़ दुन्यवी सुख व जड़ पदार्थों की इच्छा है । जिस आत्मा के अंतर में आत्म-गुणों को प्रकट करने के साधनों को छोड़ अन्य इच्छा ही न हो, वह व्यक्ति पाप कैसे कर सकता है ?

'मानवी निष्पाप होना चाहिए ।' यह बात कहने-सुनने में अच्छी लगती है, परंतु जीवन में आचरण में लाना कठिन है ।

आज कई लोगों को **'निष्पाप'** जीवन का भी पता नहीं है, क्योंकि पाप के स्वरूप का ख्याल नहीं है । इतना होने पर भी सामान्य रूप से अच्छे व्यक्ति पर जितना प्रेम होता है, उतना प्रेम पापी आदमी पर नहीं होता है ।

निष्पाप व्यक्ति पर सच्चा प्रेम तभी होगा जब पाप प्रति तिरस्कार पैदा होगा । पाप की पहचान हुए बिना पाप प्रति तिरस्कार पैदा नहीं हो सकता है ।

'पाप' खराब है, यह तो सब मानते हैं और निष्पाप वह है जो हिंसा, असत्य आदि से पर होता है । यह सामान्य मान्यता सब की होती है । **इस मान्यतानुसार भी निष्पाप बनने के लिए क्या करना चाहिए ? उसका विचार करोगे तो पता लगेगा कि दुन्यवी इच्छा से पाप का जन्म होता हैं अतः वह इच्छा दूर हो तभी निष्पाप जीवन जी सकते हैं ।**

निष्पाप बनने के लिए पाप की जड़ को उखेडना चाहिए । पाप की जड को मूल से उखाडे बिना निष्पाप नहीं बन सकते हैं ।

ज्ञानी व विचारकों की दृष्टि में या अपनी दृष्टि में भी पाप की जड़ आत्म-गुणों की प्राप्ति के साधनों को छोड़कर अन्य पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा ही है ।

यही एक मनुष्य भव है, जिस भव में आत्मा निष्पाप बन सकती है,

यह निर्विवाद बात है । इतना माननेवाले व्यक्ति को पाप का कितना भय होना चाहिए ?

मनुष्यभव पाकर भोग की इच्छा करना भी हृदय को कंपित करनेवाली बात है । जिससे पाप बढ़े, ऐसी कोई बात मनुष्य को पसंद नहीं पड़नी चाहिए । क्या यह वस्तु असंभव और अशक्य है ? असंभव व अशक्य वात ज्ञानी बताते ही नहीं हैं ।

शास्त्रकार कहते है कि पाप छोड़कर अनंत आत्माएँ निष्पाप बनी हैं । भविष्य में अनंत मनुष्य ज्ञानी की आज्ञानुसार चलकर निष्पाप मुक्ति में जाएंगे । वर्तमान में भी अनेक आत्माएँ निष्पाप व धर्ममय जीवन जी रही हैं । इस बात को आप मानते हो या नहीं ?

ज्ञानियों ने जो उपाय बताया है, वह सर्वथा असंभव है, ऐसी बात नहीं है । तत्काल सभी लोग उसका पालन न कर सके, यह संभव है, परंतु किसी से भी यह पालन शक्य नहीं है, ऐसा कहना गलत ही है ।

वर्तमान वातावरण के कारण आपके मन में यह बात बैठ गई है कि **'निष्पाप न बने तो मनुष्य भव निरर्थक जाएगा'** यह विचार करनेवाले को यह अशक्य नहीं लगेगा ।

सुख की प्राप्ति :–

मनुष्य मात्र की इच्छा सुखी बनने की है । सुख भी विशिष्ट चाहिए । हमें दुःख के लेश रहित सुख चाहिए । जिस सुख में दुःख का अंश भी न हो, ऐसा सुख चाहिए । दुःख रहित सुख के अभाव में दुःख सहित सुख का भी स्वीकार कर लेते हैं, यह अलग बात है । **परंतु हमें जो सुख चाहिये, वह सामान्य कोटि का नहीं चाहिये, बल्कि दुःख के लेश से भी रहित चाहिये । इससे आगे चलकर पूर्ण सुख चाहिये । पाँच लाखवाले की नजर पच्चीस लाखवालों पर होती है । अपने से अधिकवाले पर दृष्टि जाती है, इससे सिद्ध होता है कि हमें अपूर्ण नहीं लेकिन पूर्ण सुख चाहिये ।**

दुःख के लेश से रहित और पूर्ण सुख भी यदि मिलने के बाद नष्ट हो जाने वाला हो तो भी हमें पसंद नहीं पड़ता है । इससे सिद्ध होता है कि अपने सुख की इच्छा बडी है । हमें ऐसा सुख चाहिये जो दुःख के लेश से भी रहित हो, संपूर्ण हो और हमेशा रहनेवाला हो ।

आपको ऐसा सुख पसंद है, परंतु प्रयत्न किसके लिए होता है ? आप लोग जो प्रयत्न कर रहे हो क्या उस प्रयत्न से वैसा सुख मिल सकता है ? क्या दुनिया में ऐसी कोई वस्तु है, जिससे आपको वैसा सुख मिल सके ?

ज्ञानी तो मना करते हैं । दुनिया के पदार्थ नाशवंत ही होते हैं । अतः उनके द्वारा प्राप्त सुख भी नाशवंत होता है । दुनिया के पदार्थ इच्छापूर्वक प्राप्त नहीं होते हैं । इस कारण उनसे संपूर्ण सुख नहीं मिलता है । दुनिया के पदार्थों में इष्ट पदार्थ जाता है, अनिष्ट आता है, ऐसा चलता रहता है । अतः दुन्यवी पदार्थों के योग से प्राप्त सुख, दुःख के लेश रहित भी नहीं होता है ।

इतना होने पर भी सुख के लिए दुन्यवी पदार्थों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना, इसमें कौन सी बुद्धिमत्ता है ?

दुनिया के पदार्थों का ऐसा विचित्र स्वरूप देखकर ही ज्ञानियों ने आत्म-सुख प्रकटीकरण के लिए प्रयत्नशील बनने का उपदेश दिया है । दुन्यवी पदार्थों से सुख प्राप्ति की कल्पना छोड़ देनी चाहिये । वह कल्पना दूर हो जाय तो दुन्यवी पदार्थों की इच्छा पापरूप लगे बिना नहीं रहेगी ।

दुन्यवी सुख की इच्छा आत्म सुख में बाधक है और दुःख बढ़ानेवाली है, क्योंकि वह इच्छा मनुष्य को पाप में जोड़ती है । दुन्यवी सुख की इच्छा मानवता को दूर रखनेवाली है । इतना समझ में आ जाय तो मनुष्य तपस्वी बने बिना न रहे ।

आत्मा निष्पाप बनने पर ही दुःख के लेश से रहित पूर्ण व शाश्वत सुख प्राप्त कर सकती है । दुन्यवी नाशवंत पदार्थों की इच्छा के वैरी बने बिना आत्मा सर्वथा निष्पाप नहीं बन सकती है ।

मनुष्य जितना संतोषी, त्यागी और दुन्यवी पदार्थों की इच्छा से रहित बनेगा, उतना सज्जन बन सकेगा । आज यह मान्यता समाप्त हो रही है । आज तो घर में कोई संतोषी व त्यागी पैदा हो जाय तो उसे **'भगत'** कहकर मजाक उड़ाया जाता है ।

निष्पाप बनने की भावनावाला और दुन्यवी इच्छाओं पर नियंत्रण रखनेवाला घर चलाने के लिए लायक नहीं है, आज ऐसी मनोवृत्ति बढ़ रही है । इस कारण दुन्यवी पदार्थों की इच्छा बढ़ती जा रही है । इस

जमाने में नीति, सत्य व प्रामाणिकता के उपदेश भी जितने सफल होने चाहिये, उतने नहीं होते हैं, यह स्वाभाविक है ।

नीतिमान बनने से इज्जत बढ़ती है और आय अधिक होती है–इस इच्छा से नीति पालने वाला भी वास्तव में नीतिमान नहीं है । **''क्योंकि ध्येय गलत है''** क्षणभर नीति छोड़ने से पाँच लाख कमा लेते हैं फिर एक-दो लाख **'धर्म मार्ग में खर्च करना ।'** जिससे पाप धो जाएगा । ऐसे लोग अवसर आने पर नीति व धर्म को कलंकित करते हैं ।

धन और न्याय :–

इस जमाने में पुलिस को चोर और न्यायाधीश को अन्यायी बनाने वाले दुन्यवी सुखों के रसिक लोग ही हैं । धन को लात मारने वाले इस जगत् में विरले हैं । आज धन देखकर व्यक्ति पिघल जाता है । धन को परमेश्वर मान लेते हैं, आज कइयों की यह दशा है ।

पैसे से भी न्याय को अधिक माननेवाला ही न्याय के लिए धन की थैली को दूर फेंक सकता है । निष्पाप बनने की भावना वाला ही पैसे से न्याय को अधिक मान सकता है । दुन्यवी पदार्थों की इच्छा पर नियंत्रण न होने से अवसर आने पर न्याय को भी बेच सकता है ।

सभी अनाचारों की जड़ दुन्यवी पदार्थों की इच्छा है । समस्त सदाचारों की जड़ दुन्यवी पदार्थों की इच्छा से मुक्त बनने की इच्छा है । इतना समझ में आ जाय तो अनेक दुराचार दूर हो सकते हैं और सदाचारों में वृद्धि हो सकती हैं ।

कर्म सत्ता की पराधीनता :–

पाप करने-कराने वाले और फैलाने वाले (जानवर से भी) मनुष्य अधिक हैं । **'पशु के पास साधन नहीं हैं, हमारे पास साधन हैं तो हम पाप क्यों न करें ?'** ऐसा भी माननेवाले लोग हैं ।

पुण्ययोग से ऐसी मान्यता वाले को साधन सामग्री मिलती हैं, तब वे दूसरों के बजाय खुद को ज्यादा नुकसान पहुँचाते हैं ।

कर्मसत्ता एक दिन सब कुछ हड़प लेने वाली है । प्राप्त साधनों का जितना अधिक दुरुपयोग करेंगे, उतना अधिक बुरा फल भुगतना पड़ेगा ।

आँखों का दुरुपयोग करनेवाले को सदा काल दिखाई देगा, ऐसा नहीं है ।

आप नहीं मानोगे, इतने मात्र से भवांतर मिटने वाला नहीं है । पाप मात्र का फल है और वह पाप करनेवाले को ही भुगतना पड़ता है । पाप का फल नहीं होता तो उपकारी महापुरुष निष्पाप बनने की प्रेरणा नहीं देते ।

पाप-पुण्य को नहीं मानने वाले अपनी बुद्धि का निलाम कर रहे हैं । पाप और पुण्य के अस्तित्व को कोई भी विचारक समझ सकता है । ये सभी साधन पुण्य योग से मिले हैं और उसका उपयोग पाप में हो रहा है । दुरुपयोग को दूर कर सदुपयोग करो, इसी में आपका हित है ।

कर्म सत्ता को मानों या न मानों, उसके अधीन हुए बिना छुटकारा नहीं है ।

कर्म सत्ता से छूटने का उपाय है, परंतु उस उपाय का सेवन कौन करता है ? कर्म सत्ता को निष्फल बनानेवाली धर्मसत्ता हैं । धर्म सत्ता की शरण स्वीकार करने की ही हम बात कर रहे हैं ।

जड़ लक्ष्मी :–

पाँच इन्द्रियों से पूर्ण बुद्धिशाली या विद्वान व्यक्ति भी उन सभी वस्तुओं का पाप में उपयोग करता हो तो उसके जैसा अधम कौन होगा ? वह शिक्षण, शिक्षण नहीं है, जिसे लेने के बाद राग-द्वेष बढ़ते हो और आत्मा पाप करने में पागल बनती हो ।

आज तो अधिकांशतः ज्यों-ज्यों यूनिवर्सिटी की अधिक परीक्षा देता है, त्यों-त्यों ज्यादा लोभ बढ़ता है । पचास के बजाय पाँच सौ के वेतन की इच्छा होती है । शिक्षण के बदले भी आज पैसे चाहिये । ऐसे लोगों से दुनिया का क्या उद्धार होगा ?

ज्यों-ज्यों शिक्षण प्राप्त करें, त्यों-त्यों दुन्यवी पदार्थों का लोभ घटना चाहिये, ऐसा नहीं होता है, इसका एक ही कारण है आज मनुष्य आत्मलक्ष्मी मिटकर जड़लक्षी हो गया है ।

संसार में सुख नहीं :–

आज **'आत्मा क्या है ?'** इसका विचार ही नहीं है । सिर्फ शरीर की ही पूजा हो और शरीर में रही आत्मा को भूल जाय तो इस आर्यदेश की कीमत घटेगी या बढ़ेगी ?

आर्य देश में शरीर से भी आत्म-चिंता की प्रधानता है । आर्यों को

शरीर के सुख के बदले आत्म-सुख की अधिक कामना होती थी । आज तो वह ध्येय भूल गए हैं ।

मनुष्य जन्म पाकर क्या करना चाहिये ? यह विचार ही लगभग नष्ट हो गया है ।

मनुष्य जीवन पाकर आत्मा को निष्पाप बनाने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिये, यह ख्याल ही भूल गए हैं !

सुख चाहिए, किंतु आत्मा निष्पाप बने तो ही सुख मिल सकता है ।

पाप की जड़ कटे तो ही आत्मा निष्पाप बन सकती है । आत्म स्वरूप प्राप्ति सिवाय की इच्छा नष्ट हो तभी आत्मा निष्पाप बन सकती है । उन इच्छाओं के त्याग बिना संयम की प्राप्ति नहीं होती है और सच्चे संयमी हुए बिना सच्चे अहिंसक नहीं बन सकते हैं ।

किसी को दुःख न हो, इस प्रकार का वर्तन करना, इसी का नाम अहिंसा है ।

अहिंसा, संयम और तप को इसी कारण उत्कृष्ट मंगल कहा है ।

जो व्यक्ति संसार में किसी के लिए दुःख रूप नहीं होता उसे दुःख नहीं रहता है ।

जहाँ दुःख नहीं है वह स्थान है मोक्ष । मुक्ति मिलने पर ही इच्छित सुख प्रकट होता है – जहाँ दुःख का नामोनिशान नहीं है । यह बात उपकारी महापुरुषों ने विस्तार से समझाई है । इस वस्तु को समझकर ज्ञानियों की आज्ञानुसार वर्तन करना और जो कोई सुने उसे ज्ञानियों का उपदेश सुनाना, यह हमारा धर्म है ।

ज्ञानियों की आज्ञानुसार वर्तन किए बिना सुख नहीं है । यह आपको पसंद हो तो मुक्ति प्राप्ति के लिए निष्पाप बनने के प्रयत्न में प्रमादी न बनें । यह बात दिमाग में नहीं उतरती हो तो सोचो और पूछो ।

आपको सुख पसंद है और वह इस मार्ग के सेवन बिना मिलने वाला नहीं है, यह निश्चित बात हैं । अतः ज्ञानियों के वचन पर श्रद्धा रखकर ज्ञानियों की आज्ञानुसार वर्तन करने के लिए उद्यमशील बनो और उसके द्वारा दुःख के लेश से रहित संपूर्ण और शाश्वत सुख प्राप्त करो, यही एक शुभाभिलाषा ।

22
प्रवचन-मोती

⇒ **जिनको सुख की परवाह नहीं, दुःख का डर नहीं, मृत्यु की भीति नहीं, जीने का लोभ नहीं उनका जीवन सार्थक है !**

⇒ सागर का मध्यभाग जिस प्रकार चंचल नहीं होता, उसी प्रकार महापुरुषों का हृदय भी चंचल नहीं होता । शायद सागर के मध्य भाग में भी चंचलता आ जाए परन्तु महापुरुषों का हृदय तो सदैव गंभीर ही रहता है ।

⇒ **धन कमाने की इच्छा न हो ऐसा व्यापारी नहीं हो सकता, उस तरह मोक्ष की इच्छा न हो ऐसा जैन भी नहीं हो सकता ।**

⇒ दूसरे को दुःखी बनाने की इच्छा वह खुद को दुःखी बनाने की इच्छा है और दूसरे को सुखी बनाने की इच्छा वह खुद को सुखी बनाने की इच्छा है ।

⇒ **संसार के प्रति अरुचि व मोक्ष के प्रति रुचि प्रकट करना यही सच्चे साधु का भूषण है । संसार की रुचि को बढ़ानेवाले तो शासन के द्रोही हैं और स्वपर के हित की कत्लेआम करनेवाले हैं ।**

⇒ **'धर्म से सुख मिलता है'** सिर्फ इतना ही नहीं लेकिन वह सुख छोड़ने जैसा है, ऐसा जो मानता है वही धर्मश्रद्धालु है, क्योंकि सुख प्राप्त करना यह नहीं, लेकिन सुख को छोड़ना वह धर्म है ।

⇒ **पुण्य से प्राप्त सुख की सामग्री पर राग करना वह पाप है और पाप से प्राप्त दुःख की सामग्री पर द्वेष करना भी पाप है ।**

विजय रामचन्द्रसूरि

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न, पू.आ. श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 281 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	Pearls of Preaching	60/-	43.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
2.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	44.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
3.	अमृत रस का प्याला	300/-	45.	दूसरा कर्मग्रन्थ	55/-
4.	ध्यान साधना	40/-	46.	तीसरा कर्मग्रन्थ	90/-
5.	शंका समाधान (भाग-5)	160/-	47.	चौथा कर्मग्रन्थ	140/-
6.	शत्रुंजय यात्रा	40/-	48.	पाँचवाँ कर्मग्रन्थ	160/-
7.	शत्रुजय की भाव यात्रा	230/-	49.	छठा-कर्मग्रन्थ	210/-
8.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	400/-	50.	नित्य देववंदन	निशुल्क
9.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	51.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	160/-
10.	प्रवचन का अमृत	200/-	52.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम(भाग-1)	1170/-
11.	पर्युषण अष्टानिका प्रवचन	120/-	53.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम्(भाग-2)	1040/-
12.	गणधर-संवाद	80/-	54.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम्(भाग-3)	900/-
13.	आओ ! उपधान पौषध करें !	130/-	55.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम्(भाग-4)	1270/-
14.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-	56.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	170/-
15.	संस्मरण	50/-	57.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	160/-
16.	आध्यात्मिक पत्र	60/-	58.	योग की आठ दृष्टियाँ	430/-
17.	चिंतन का अमृत कुंभ	80/-	59.	10 श्रमण-धर्म	250/-
18.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-1)	210/-	60.	साचा माणस बनीए ! (गुजराती)	300/-
19.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-2)	220/-	61.	शुभ-संदेश	250/-
20.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-3)	125/-	62.	भक्ति से मुक्ति	200/-
21.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-4)	135/-	63.	सहनशील बनों (22 परीषह)	180/-
22.	विवेकी बनो	90/-	64.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	350/-
23.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-	65.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	300/-
24.	प्रवचन-वर्षा	60/-	66.	नवकार-प्रवचन	180/-
25.	आओ श्रावक बनें !	25/-	67.	जीवन-प्रसंग	360/-
26.	व्यसन-मुक्ति	100/-	68.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-
27.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	69.	समाधि मृत्यु	80/-
28.	महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा 58-80	280/-	70.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
29.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-	71.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
30.	समाधि मृत्यु	80/-	72.	श्रमण-हितशिक्षा	250/-
31.	तीन भाष्य	150/-	73.	हृदय प्रदीप (भाग-1)	260/-
32.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-	74.	हृदय प्रदीप (भाग-2)	260/-
33.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-	75.	हार्दिक-भावांजलि	210/-
34.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-	76.	हालार-गौरव वज्रसेन-सौरभ	200/-
35.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-	77.	आओ ! भाव सामायिक करें !	200/-
36.	कोयंबत्तुर-प्रवचन	150/-	78.	चिंतन की चांदनी	200/-
37.	दक्षिण भारत प्रवचन	160/-	79.	आओ ! संस्कृत सीखें ! भाग-3	360/-
38.	विविध देववंदन	100/-	80.	आओ ! संस्कृत सीखें ! Guide Book	270/-
39.	नवतत्त्व विवेचन	110/-	81.	नवतत्त्व संग्रह	1100/-
40.	लघु संग्रहणी	140/-	80.	बिन्दु में सिन्धु	170/-
41.	समाधि की साधना	300/-	82.	जिनवाणी का अमृत	220/-
42.	New Message for a New Day	600/-			

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 84 84 84 84 51 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299